* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

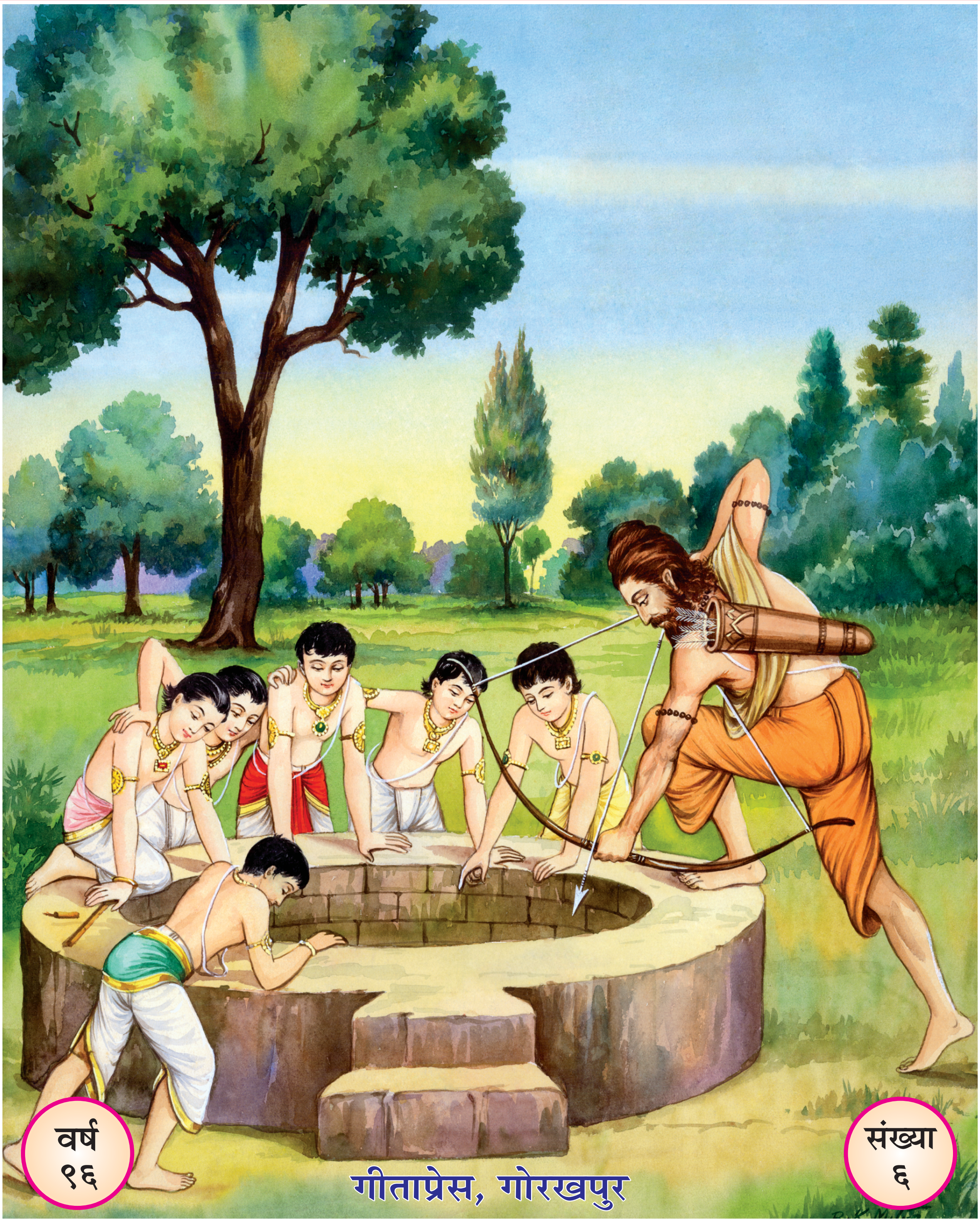

द्रोणाचार्यका कुएँसे गेंद निकालना

भगवान् कार्तिकेय

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥

वर्ष ९६ | गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, जून २०२२ ई० | संख्या ६

पूर्ण संख्या ११४७

भगवान् कार्तिकेयकी स्तुति

नमः कल्याणरूपाय नमस्ते विश्वमंगल। विश्वबंधो नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन॥
नमोऽस्तु ते दानववर्यहन्त्रे बाणासुरप्राणहराय देव। प्रलंबनाशाय पवित्ररूपिणे नमो नमः शंकरतात तुभ्यम्॥
त्वमेव कर्त्ता जगतां च भर्त्ता त्वमेव हर्त्ता शुचिज प्रसीद। प्रपञ्चभूतस्तव लोकबिंबः प्रसीद शम्भ्वात्मज दीनबंधो॥
देवरक्षाकर स्वामिन् रक्ष नः सर्वदा प्रभो। देवप्राणावनकर प्रसीद करुणाकर॥

[शिवपुराण, रुद्रसंहिता, कुमारखण्ड १२। २—५]

[देवता बोले—] कल्याणरूप आपको नमस्कार है। हे विश्वमंगल! आपको नमस्कार है। हे विश्वबन्धो! हे विश्वभावन! आपको नमस्कार है। बड़े-बड़े दैत्योंका वध करनेवाले, बाणासुरके प्राणका हरण करनेवाले तथा प्रलम्बासुरका वध करनेवाले हे देव! आपको नमस्कार है। हे शंकरपुत्र! आप पवित्ररूपको बार-बार नमस्कार है। हे अग्निदेवके पुत्र! आप ही इस जगत्के कर्ता, भर्ता तथा हर्ता हैं। आप [हमलोगोंपर] प्रसन्न हों। यह लोकबिम्ब आपका ही प्रपंच है, हे शम्भुपुत्र! हे दीनबन्धो! आप प्रसन्न होइये। हे देवरक्षक! हे स्वामिन्! हे प्रभो! हमलोगोंकी सर्वदा रक्षा कीजिये। हे देवताओंके प्राणकी रक्षा करनेवाले! हे करुणाकर! प्रसन्न होइये।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, जून २०२२ ई०, वर्ष ९६—अंक ६

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- भगवान् कार्तिकेयकी स्तुति	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- धनुर्विद्याका अद्भुत चमत्कार [**आवरणचित्र-परिचय**]	७
५- स्त्री-पुरुषके परस्पर कर्तव्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८
६- जब अपवित्र विचार घेरते हैं! [**हमारे आन्तरिक शत्रु**] (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	९
७- प्रेम-तत्त्व [**भगवच्चर्चा**] (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१५
८- नवीन मनोविज्ञान और योग (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए०, बी०टी०)	१६
९- दृश्यमात्र अदृश्यमें जा रहा है [**साधकोंके प्रति**] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१९
१०- मैं कौन हूँ? [Who Am I?]	२०
११- जहाँ प्रेम है, वहीं ईश्वर है (लियो टॉलस्टाय)	२१
१२- निष्काम कर्मद्वारा परमात्माकी प्राप्ति (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	२७
१३- 'सच्चा सौदा नामका····' (प्रेमप्रकाशी सन्त श्रीमोनूरामजी)	२८
१४- श्रीपुरी धाम [**तीर्थ-दर्शन**] (आचार्य श्रीजगन्नाथप्रसादजी गुप्त)	२९
१५- सच्चा ज्ञान (गोलोकवासी सन्त श्रीकेशवरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)	३२
१६- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)	३३
१७- कबीरका सामाजिक चिन्तन [**कबीर-जयन्तीपर विशेष**] (डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त)	३४
१८- मानस और मानसकार—एक परिचय (आचार्य श्रीरसिकबिहारीजी 'मंजुल')	३६
१९- कालिदासके काव्यमें काश्मीर-वर्णन (डॉ० श्रीसीतारामजी सहगल, एम्० ए०, पी-एच०डी०)	३९
२०- सन्त श्रीसियारामजी महाराज [**सन्त-चरित**] (एक भक्तहृदय)	४१
२१- नामदेवका गौके लिये प्राणदान [**गो-चिन्तन**]	४३
२२- काश्मीरनरेशकी गोभक्ति	४३
२३- सुभाषित-त्रिवेणी	४४
२४- व्रतोत्सव-पर्व [**श्रावणमासके व्रत-पर्व**]	४५
२५- कृपानुभूति	४६
२६- पढ़ो, समझो और करो	४७
२७- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- द्रोणाचार्यका कुएँसे गेंद निकालना	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भगवान् कार्तिकेय	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- द्रोणाचार्यका कुएँसे गेंद निकालना	(इकरंगा)	७
४- भगवान् जगन्नाथका मन्दिर—श्रीपुरीधाम	(,,)	२९
५- सन्त श्रीसियारामजी महाराज	(,,)	४१
६- कबूतर-कबूतरीका दिव्यरूप धारणकर स्वर्ग-गमन	(,,)	५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें शुल्क Air Mail — वार्षिक US$ 50 (₹ 3,000); पंचवर्षीय US$ 250 (₹ 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

॥ श्रीहरिः ॥

एक झेन संत अपने शिष्योंके साथ एक गाँवसे गुजर रहे थे। सड़कपर उन्हें एक ग्रामीण दीखा, जो गायकी रस्सी पकड़े उसे ले जा रहा था। गुरुजीने शिष्योंसे पूछा कि रस्सीने गायको बाँध रखा है या किसानको? स्वाभाविक उत्तर था कि रस्सीने गायको बाँध रखा है।

गुरुजीने अपने झोलेसे एक कैंची निकालकर बगलसे जाती गायकी रस्सी काट डाली। रस्सी कटते ही गाय तेजीसे भाग चली और किसान उसके पीछे दौड़ा। गुरुजीने शिष्योंसे पूछा—यदि रस्सीने केवल गायको बाँध रखा था तो उसके कटनेसे किसान क्यों दौड़ा? शिष्य समझ गये कि रस्सीने गायके शरीरको और किसानके मनको एक साथ बाँध रखा था। इसीलिये उसके कटते ही दोनों दौड़ पड़े।

हम भी अपने चारों ओर नजर दौड़ाकर देखें तो घर-संसारकी तमाम चीजोंसे हम अपनेको बँधा पायेंगे। भले ही वे हमारे पास न हों। भगवन्नामका आश्रय लेकर हम शनैः-शनैः उन अदृश्य डोरियोंसे मुक्त हो सकते हैं और अपने सच्चिदानन्दस्वरूपको प्राप्त कर सकते हैं।

—सम्पादक

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—तुम संसारमें इच्छानुसार भोगसुख पानेमें सदा परतन्त्र हो। इच्छा कितनी ही कर लो, प्रारब्धमें नहीं होगा तो वह भोग कदापि नहीं मिलेगा। परंतु भगवान्‌को प्राप्त करनेमें सदा स्वतन्त्र हो; क्योंकि भगवान् अनन्य इच्छा होनेपर ही मिल जाते हैं। याद रखो, भोगोंकी प्राप्तिमें कर्म कारण हैं और भगवान्‌की प्राप्तिमें केवल इच्छा।

याद रखो—भोगोंकी प्राप्ति कर्म करनेपर भी अनिश्चित है और भगवान्‌की प्राप्ति अनिवार्य इच्छा होनेपर निश्चित है।

याद रखो—इच्छा करनेपर ही इच्छानुसार भोग-पदार्थ नहीं मिलते, पर यदि कहीं मिल भी गये तो उनसे दु:खकी निवृत्ति नहीं होगी; क्योंकि कोई भी भोगपदार्थ या लौकिक स्थिति पूर्ण नहीं है, सबमें अभाव है और जहाँ अभाव है, वहीं प्रतिकूलता है तथा जहाँ प्रतिकूलता है, वहीं दु:ख है। पर भगवान्‌की प्राप्ति होनेपर सारे दु:खोंका सर्वथा अभाव हो जायगा; क्योंकि भगवान् अभावरहित तथा सर्वथा पूर्णतम हैं। उनकी प्राप्ति होनेपर न अपूर्णताका अनुभव होगा, न अभाव दीखेगा, न प्रतिकूलता रहेगी। सर्वत्र अनुकूलता तथा सर्वत्र केवल सुख ही रहेगा।

याद रखो—भोगोंकी प्राप्ति होनेपर भी भोगोंका वियोग या नाश होगा ही, अत: परिणाममें वे दु:खदायी होंगे; परंतु भगवान्‌की प्राप्ति होनेपर फिर कभी भगवान्‌का वियोग नहीं होगा, अत: नित्य सुख रहेगा।

याद रखो—भोगोंकी कामनासे ज्ञान हरा जाता है और मनुष्य पाप करनेको बाध्य होता है। कामना ही पापोंकी जननी है, अतएव भोगप्राप्तिकी कामना और प्रयत्नमें पाप होते हैं तथा पापका फल निश्चित ताप है ही। पर भगवान्‌की कामनासे अन्त:करणकी शुद्धि होती है, ज्ञानका प्रकाश होता है और भगवत्प्राप्तिके समस्त साधन ही पुण्यमय, पवित्र और दैवीसम्पत्तिके स्वरूप हैं, अतएव भगवान्‌की कामना और उनकी प्राप्तिके प्रयत्नमें ही पुण्य और सुख होता है।

याद रखो—भोगोंकी कामना तथा भोगसुखोंमें निमग्न-चित्तवाला पुरुष जीवनभर अशान्त रहता है तथा मृत्युके समय नाना प्रकारकी असंख्य चिन्ताओंसे ग्रस्त तथा अपूर्णकाम और प्राप्त भोगोंके वियोगकी सम्भावनासे सर्वथा अशान्त तथा अत्यन्त दुखी रहता है। पर भगवान्‌की कामना तथा भगवद्भक्तिमें निमग्न-चित्तवाला पुरुष जीवनभर शान्त-सुखी रहता है और मृत्युके समय एकमात्र सत्-चित्-आनन्दमय श्रीभगवान्‌का चिन्तन करता हुआ परम शान्ति और परमानन्दकी दशाको प्राप्त होता है।

याद रखो—मृत्युके समय मनुष्यका जहाँ मन रहता है, उसी गतिको वह प्राप्त होता है—इस सिद्धान्तके अनुसार भोगकामी प्राणी दु:खमय योनि या लोकोंको प्राप्त करता है तथा भगवान्‌का भक्त भगवान्‌को या भगवान्‌के नित्य दिव्य धामोंको प्राप्त करता है।

याद रखो—भोगकामनाकी पूर्तिमें तुम सदा-सर्वदा पराधीन हो, पर कामनाका त्याग करके भगवान्‌का भजन करनेमें सर्वथा स्वाधीन हो; अत: भोगकामनाका त्याग करके भगवान्‌में चित्तवृत्तिको लगाओ। '**शिव**'

आवरणचित्र-परिचय—

धनुर्विद्याका अद्भुत चमत्कार

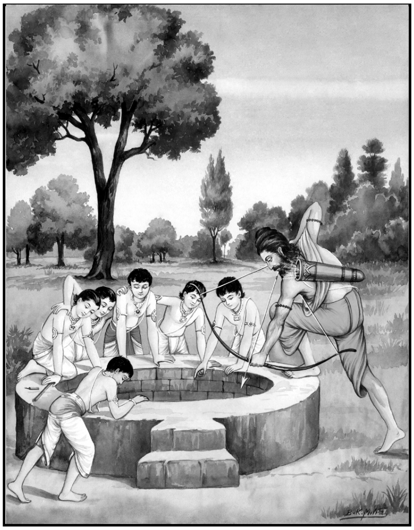

द्रोणाचार्य भरद्वाजमुनिके पुत्र थे। ये संसारके श्रेष्ठ धनुर्धर थे। महाराज द्रुपद इनके बचपनके मित्र थे। भरद्वाजमुनिके आश्रममें द्रुपद भी द्रोणके साथ ही विद्याध्ययन करते थे। भरद्वाजमुनिके शरीरान्त होनेके बाद द्रोण वहीं रहकर तपस्या करने लगे। वेद-वेदांगमें पारंगत तथा तपस्याके धनी द्रोणका यश थोड़े ही समयमें चारों ओर फैल गया। इनका विवाह शरद्वान् मुनिकी पुत्री तथा कृपाचार्यकी बहन कृपीसे हुआ। कृपीसे द्रोणाचार्यको एक पुत्र हुआ, जो बादमें अश्वत्थामाके नामसे अमर हो गया।

उस समय शस्त्रास्त्र-विद्याओंमें श्रेष्ठ श्रीपरशुरामजी महेन्द्रपर्वतपर तप करते थे। वे दिव्यास्त्रोंके ज्ञानके साथ सम्पूर्ण धनुर्वेद ब्राह्मणोंको दान करना चाहते थे। यह सुनकर आचार्य द्रोण अपनी शिष्यमण्डलीके साथ महेन्द्रपर्वतपर गये और उन्होंने प्रयोग, रहस्य तथा संहारविधिके सहित श्रीपरशुरामजीसे सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया। अस्त्र-शस्त्रकी विद्यामें पारंगत होकर द्रोणाचार्य अपने मित्र द्रुपदसे मिलने गये। द्रुपद उस समय पांचालनरेश थे। आचार्य द्रोणने द्रुपदसे कहा—'राजन्! मैं आपका बालसखा द्रोण हूँ। मैं आपसे मिलनेके लिये आया हूँ।' द्रुपद उस समय ऐश्वर्यके मदमें चूर थे। उन्होंने द्रोणसे कहा—'तुम मूढ़ हो, पुरानी लड़कपनकी बातोंको अबतक ढो रहे हो, सच तो यह है कि दरिद्र मनुष्य धनवान्का, मूर्ख विद्वान्का तथा कायर शूरवीरका मित्र हो ही नहीं सकता।' द्रुपदकी बातोंसे अपमानित होकर द्रोणाचार्य वहाँसे उठकर हस्तिनापुरकी ओर चल दिये।

एक दिन कौरव-पाण्डव राजकुमार परस्पर गेंद खेल रहे थे। अकस्मात् उनकी गेंद कुएँमें गिर गयी। आचार्य द्रोणको उधरसे जाते हुए देखकर राजकुमारोंने उनसे गेंद निकालनेकी प्रार्थना की। आचार्य द्रोणने मुट्ठीभर सींकके बाणोंसे गेंद निकाल दी। उसी समय राजकुमार युधिष्ठिरकी अँगूठी कुएँमें गिर गयी। आचार्यने उसी विधिसे अँगूठी भी निकाल दी। द्रोणाचार्यके इस अस्त्रकौशलको देखकर सभी राजकुमार आश्चर्यचकित रह गये। राजकुमारोंने कहा—'ब्रह्मन्! हम आपको प्रणाम करते हैं। यह अद्भुत अस्त्रकौशल संसारमें आपके अतिरिक्त और किसीके पास नहीं है। कृपया आप अपना परिचय देकर हमारी जिज्ञासा शान्त करें।' द्रोणने उत्तर दिया—'मेरे रूप और गुणोंकी बात तुमलोग भीष्मसे कहो। वही तुम्हें हमारा परिचय बतायेंगे।'

राजकुमारोंने जाकर सारी बातें भीष्मजीसे बतायीं। भीष्मजी समझ गये कि द्रोणाचार्यके अतिरिक्त यह कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। राजकुमारोंके साथ आकर भीष्मने आचार्य द्रोणका स्वागत किया और उनको आचार्यपदपर प्रतिष्ठित करके राजकुमारोंकी शिक्षा-दीक्षाका कार्य सौंप दिया। उन्होंने आचार्यके निवासके लिये धन-धान्यसे पूर्ण सुन्दर भवनकी भी व्यवस्था कर दी। आचार्य वहाँ रहकर शिष्योंको प्रीतिपूर्वक शिक्षा देने लगे। धीरे-धीरे पाण्डव और कौरव राजकुमार अस्त्र-शस्त्रविद्यामें निपुण हो गये। अर्जुन धनुर्विद्यामें सबसे अधिक प्रतिभावान् निकले। आचार्यके कहनेपर उन्होंने द्रुपदको युद्धमें परास्त करके और उन्हें बाँधकर गुरुदक्षिणाके रूपमें गुरुचरणोंमें डाल दिया। अतः वे द्रोणाचार्यके अधिक प्रीतिभाजन बन गये।

अनमोल वचन—

स्त्री-पुरुषके परस्पर कर्तव्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

❀ स्त्रीमात्र जगत्-जननीका स्वरूप है, यह समझकर अपनी स्त्रीको छोड़कर अन्य सबके चरणोंमें हृदयसे प्रणाम करना और सबके प्रति भक्ति-श्रद्धा रखना मनुष्यके लिये कल्याणप्रद है। जो पुरुष परस्त्रीमात्रमें मातृ-बुद्धि रखता है, उसके तेज और तपकी वृद्धि होती है और वह पापोंसे बचकर भगवान्‌को पा सकता है।

❀ साध्वी स्त्रियोंको इस बातका भी विशेष ध्यान देना चाहिये कि घरमें किसी प्रकार कलह, लड़ाई-झगड़ा न होने पावे; क्योंकि कलह साक्षात् कलियुगकी मूर्ति है। जहाँ कलह होता है, वहाँ क्रोध और क्लेशकी वृद्धि होकर बड़ा अनर्थ हो जाता है। कोई-कोई तो उत्तेजित होकर कुएँमें गिरकर, फाँसी लगाकर या जहर-विष खाकर कालकी ग्रास बन जाती हैं। काल, क्लेश, कल्पना, कलि इन सबकी उत्पत्ति कलहसे होती है, इसलिये सुख चाहनेवाली स्त्रियोंको चाहिये कि इसको अपने घरमें प्रवेश ही नहीं होने दें। कलह धन, धर्म, गुण, शरीर और कुलको नाश करनेवाला अग्नि है। यह इस लोक और परलोकको कलंक लगानेवाला है। इसलिये इसका सूत्रपात होते ही प्रेमभरे विनययुक्त हितकारक सरल ठण्डे वचनरूपी जलसे सींचकर इस कलह-अग्निको तुरंत बुझानेकी चेष्टा करनी चाहिये। इस प्रकारका व्यवहार करनेवाली स्त्री मनुष्योंके द्वारा ही नहीं, देवताओंद्वारा भी पूजनीया बन जाती है। उसे मनुष्य न समझकर देवी समझना चाहिये।

❀ स्त्रियोंको अपने पतिके अतिरिक्त दूसरे पुरुषका दर्शन, स्पर्श, भाषण, चिन्तन और उसके साथ एकान्तवासादि भी नहीं करना चाहिये। विशेष आवश्यकता हो तो नीची नजर रखकर उनको पिता और भाईके समान समझकर किसी अच्छी स्त्री, बालक आदिको साथमें रखकर पवित्र बातें करनेमें दोष नहीं है। किंतु अकेले पुरुषके साथ एकान्तमें कभी वार्तालाप या वास नहीं करना चाहिये, चाहे पिता, भाई, पुत्र ही क्यों न हों; क्योंकि इन्द्रियोंका समुदाय बलवान् है, वह बुद्धिमानोंको भी मोहित कर देता है। अतः सदा सावधान रहना चाहिये।

❀ वेश्या, व्यभिचारिणी, लड़ाई-झगड़ा करनेवाली, निर्लज्ज और दुष्टा स्त्रियोंका संग कभी नहीं करना चाहिये; परंतु उनसे घृणा और द्वेष भी नहीं करना चाहिये। उनके अवगुणोंसे ही घृणा करनी चाहिये। बड़ोंकी, दुखियोंकी और घरपर आये हुए अतिथियोंकी एवं अनाथोंकी सेवापर विशेष ध्यान देना चाहिये।

❀ पतिका जो इष्ट है, वही स्त्रीका भी इष्ट है। अतः पतिके बताये हुए इष्टदेव परमात्माके नामका जप और रूपका ध्यान करना चाहिये। स्त्रियोंके लिये पति ही गुरु है। यदि पतिको ईश्वरकी भक्ति अच्छी न लगती हो तो पिताके घरसे प्राप्त हुई शिक्षाके अनुसार भी ईश्वरकी भक्ति बाहरी भजन, सत्संग, कीर्तन आदि न करके गुप्तरूपसे मनमें ही करें। भक्तिका मनसे ही विशेष सम्बन्ध होनेके कारण यह जहाँतक बन सके गुप्तरूपसे ही करनी चाहिये; क्योंकि गुप्तरूपसे ही हुई भक्ति विशेष महत्त्वकी होती है।

❀ पतिका स्वभाव कैसा ही हो, पत्नीको उचित है कि वह सदा पतिके अनुकूल रहे। इसी प्रकार पतिका भी कर्तव्य है कि वह दुष्ट स्वभावकी पत्नीका भी पालन-पोषण करे।

❀ मनुष्योंके लिये पत्नी धर्म, अर्थ एवं कामकी सिद्धिका कारण है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—कोई भी क्यों न हो, पत्नीके न रहनेपर वह कर्मानुष्ठानके योग्य नहीं रह जाता। जैसे स्त्रीके लिये पतिका त्याग अनुचित है, उसी प्रकार पुरुषोंके लिये स्त्रीका त्याग भी उचित नहीं है।

❀ हिन्दू-धर्म पतिके द्वारा पत्नीके अथवा पत्नीके द्वारा पतिके त्यागकी आज्ञा नहीं देता। किसी भी अवस्थामें पति-पत्नीका सम्बन्ध-विच्छेद हिन्दू-धर्मको मान्य नहीं है।

❀ परस्त्रीगमनरूप व्यभिचारसे पुरुष धर्म, तेज, बल और रूप—चारों गवाँ बैठता है, चाहे वह इन्द्र ही क्यों न हो। अतः जो इन चारोंको बनाये रखना चाहता है, उसे परस्त्रीगमनरूप पापसे सदा बचते रहना चाहिये।

हमारे आन्तरिक शत्रु—

जब अपवित्र विचार घेरते हैं!

[काम, कारण और निवारण]

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

'विषयमात्रका निरोध ही ब्रह्मचर्य है। जो अन्य इन्द्रियोंको जहाँ-तहाँ भटकने देकर केवल एक ही इन्द्रियको रोकनेका प्रयत्न करता है, वह निष्फल प्रयत्न करता है।'

'कानसे विकारकी बातें सुनना, आँखसे विकार उत्पन्न करनेवाली वस्तु देखना, जीभसे विकारोत्तेजक वस्तु चखना, हाथोंसे विकारोंको भड़कानेवाली चीजको छूना और साथ ही जननेन्द्रियको रोकनेका प्रयत्न करना, यह तो आगमें हाथ डालकर जलनेसे बचनेका प्रयत्न करनेके समान हुआ। इसलिये जो जननेन्द्रियको रोकनेका निश्चय करे, उसे पहलेसे ही प्रत्येक इन्द्रियको उस-उस इन्द्रियके विकारोंसे रोकनेका निश्चय कर ही लेना चाहिये।'—गाँधी

× × ×

सच पूछिये तो हम आगमें हाथ डालकर भी यही सोचते हैं कि हम जलेंगे नहीं।

केवल जननेन्द्रियको रोकनेकी बात कहकर हम ब्रह्मचारी बनना चाहते हैं। अन्य इन्द्रियोंको मनमानी करनेकी छूट देकर भी हम चाहते हैं कि ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन कर लेंगे!

परंतु ऐसा भी कहीं सम्भव है?

'हँसब ठठाइ फुलाउब गालू?'

× × ×

अपवित्र विचारोंसे मुक्त होना है, ब्रह्मचर्यका पालन करना है, पवित्र जीवन बिताना है तो हमें केवल एक इन्द्रियपर नहीं, सभी इन्द्रियोंपर पहरा बैठाना होगा। किसी भी इन्द्रियको छूट दी कि सारा किया-धरा मिट्टी हुआ!

× × ×

इन्द्रियाँ दस हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ।

ज्ञानेन्द्रियाँ

आँख कान नाक जिह्वा त्वचा

कर्मेन्द्रियाँ

हाथ पैर वाणी गुदा उपस्थ

खुराफातकी जड़ हैं ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तो उनकी अनुगामिनी ठहरीं। ज्ञानेन्द्रियाँ काबूमें रहें तो कर्मेन्द्रियोंको रोकनेमें अधिक कठिनता न होगी।

आँखसे हम देखते हैं। उसका विषय है—रूप।

कानसे हम सुनते हैं। उसका विषय है—शब्द।

नाकसे हम सूँघते हैं। उसका विषय है—गन्ध।

जिह्वासे हम चखते हैं। उसका विषय है—रस।

त्वचासे हम छूते हैं। उसका विषय है—स्पर्श।

इन विषयोंको—रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्शको हम रोक लें, इनके पीछे हम दीवाने न बनें, तो काम बनते देर न लगे। अपवित्र विचार इसीलिये घेरते हैं, टिकते हैं और हमपर हावी होते हैं कि हमने अपनेको इन विषयोंका गुलाम बना रखा है।

× × ×

लोग कहते हैं—'आँख है तो जहान है।'

आँख शरीरकी नियामत है।

मेरी बूढ़ी माँ आँखोंसे लाचार है। नाती-पोतोंका मुँह देखनेके लिये अब वह तरसा करती है। बच्चोंको टटोलकर वह अपनी इस इच्छाकी आंशिक पूर्ति करती है। पर उतनेसे कहीं जी भर पाता है उसका?

कुछ ही दिन पहले तो अमरीकाके एक अन्धेकी घोषणा पढ़ी थी अखबारोंमें। एक आँखके बदलेमें वह कई हजार डालर देनेको तैयार था!

जी, तो यह आँख इतनी कीमती है।

हजारों ही नहीं, लाखों रुपये इसपर हँसी-खुशीसे न्यौछावर किये जा सकते हैं।

× × ×

और कितना अधिक दुरुपयोग करते हैं हम इसका! घीसाका एक प्रश्न है—

आँखें जती सती लखने को,
संतों के दरसन करने को,
आप लगे अबला तकने को,
खो बैठे ईमान को!
ऐसा क्यों अधरम कीन्हा?

आँखें हैं इसलिये कि हम इनसे दर्शन करें प्रभुकी अपार सौन्दर्यमयी छबिका।

इनसे हम भगवान्‌की अद्भुत सृष्टि देखें। जीवनके आवश्यक कार्य तो करें ही, उनके साथ-साथ योगी-यतियों, सन्तों-महात्माओंके दर्शन करें और इस प्रकार अपनेको धन्य बनायें।

परंतु इन आँखोंसे हम देखते क्या हैं? करते क्या हैं?

× × ×

आँखोंसे हम देखते हैं युवक-युवतियोंका, स्त्री-पुरुषोंका कल्पित सौन्दर्य।

आँखोंसे हम देखते हैं नारीके भिन्न-भिन्न अंग-उपांग और उनमें आसक्ति बढ़नेपर शिकायत करते हैं—

'आँखोंका था कसूर छुरी दिल पै चल गयी।'

आँखोंसे हम देखते हैं गन्दे चित्र, गन्दे सिनेमा, नाटक, नौटंकी, प्रहसन।

आँखोंसे हम देखते हैं गन्दे दृश्य, गन्दी तस्वीरें, गन्दी क्रीड़ाएँ, गन्दी पुस्तकें, गन्दी पत्र-पत्रिकाएँ, गन्दा साहित्य, गन्दे प्रदर्शन।

आँखोंसे हम देखते हैं ऐसी कलाकृतियाँ, जो हमारे हृदयमें अपवित्र विचारोंको भड़काती हैं।

× × ×

और तब हम अपनी सफाई देते हुए कह उठते हैं—

'जेरे दीवार खड़े हम तेरा क्या लेते हैं,
देख लेते हैं तपिश दिल की बुझा लेते हैं।'

देखनेकी यह सामान्य-सी क्रिया ही सारे अनर्थोंका सूत्रपात करती है।

पतंगा दीपकको केवल देखता ही तो है!

और देखते-देखते ही वह उसमें जाकर भस्म हो जाता है! अजामिलने एक बार देखा ही तो था, सारा जीवन पापमय बन गया!

तभी न तुलसीबाबाने चेतावनी दी है हमें—

दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥

× × ×

आँखोंकी इस सामान्य क्रियाने न जाने कितने स्त्री-पुरुषोंको पतनके गड़हेमें गिरा दिया है!

बड़े-बड़े विद्वान् और पण्डित, सदाचारी और आदर्शवादी योगी और संन्यासी इसके फेरमें ऐसे डूबे कि कहीं पता भी न चल सका!

× × ×

तो आँखोंकी वासनासे मुक्त होनेके लिये क्या हमें बिल्वमंगलकी तरह आँखें फोड़ लेनी चाहिये?

'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी!'

सुननेमें तरकीब अच्छी तो मालूम होती है, पर क्या सोलह आने कारगर होगी वह?

जिनको आँखें नहीं होतीं, जिनकी आँखोंकी रोशनी जाती रहती है, वे विकारोंसे सर्वथा मुक्त हो जाते हैं क्या?

जी नहीं, अन्धे भी विकारी पाये जाते हैं!

× × ×

असलियत तो यह है कि आँखें फोड़कर भी विकारी रहा जा सकता है।

और आँखें रखकर भी विकारमुक्त हुआ जा सकता है। विषको अमृत बना देनेवाले सूरदासकी बात छोड़िये, मिल्टनकी बात जाने दीजिये, अन्ध गायक के०सी० दे (केष्टो बाबू)-को भूल जाइये—सभी अन्धे कहाँ हो पाते हैं ऐसे, जिनके चर्मचक्षु मुँदकर ज्ञानचक्षु खुल जायँ। अधिकतर तो अन्धे ऐसे ही होते हैं, जिनका जीवन उनके लिये तो अभिशाप रहता ही है, समाज और देशके लिये भी अभिशाप

सिद्ध होता है।

× × ×

तब प्रभुद्वारा मिले इस वरदानसे वंचित हो जाना, इस नियामतसे हाथ धो बैठना कहाँकी अक्लमन्दी है?

जिस आँखसे हम अपनी ही सेवा नहीं करते, घर, परिवार, समाज, देश, राष्ट्र और सारे संसारकी अपार सेवा करनेमें भी समर्थ हो सकते हैं, उसे फोड़ बैठना कहाँकी बुद्धिमानी है?

× × ×

प्रश्न उठता है कि आँखें शरारत किये बिना मानती नहीं, इधर-उधर भटके बिना मानती नहीं और उन्हें फोड़ देना भी ठीक नहीं, तब किया क्या जाय?

उपाय उसके लिये भी है, पर कोई करे तब तो?

× × ×

आँखोंको फोड़नेकी जरूरत नहीं। वे रहें, स्वस्थ रहें, सबल रहें, सौ सालकी उम्रमें भी वे बिना दिक्कतके सूईमें तागा डालती रहें, परंतु उनमें विकार नहीं रहना चाहिये।

आँखें रहें, जगत्के प्राणी-पदार्थोंको देखें, अपना काम ठीकसे करें, परंतु रूपकी प्यास उनमें नहीं रहनी चाहिये।

आँखोंको रहना चाहिये, परंतु उनका दृष्टिकोण बदल जाना चाहिये। उनमेंसे विकार निकल जाना चाहिये। उनपर ऐसा नियन्त्रण होना चाहिये कि वे पवित्र ही देखें, अपवित्र नहीं। अच्छाई ही देखें, बुराई नहीं।

× × ×

परंतु आँखोंको पवित्र बनाना कोई सरल बात है? मुश्किल जरूर है, पर करनेवालेके लिये नहीं।

× × ×

आँखोंको काबूमें करनेका एक सीधा उपाय है—चलते समय दृष्टि नीची करके चलना। अपने आगे चार हाथसे अधिक न देखे। आगे-पीछे, अगल-बगल, इधर-उधर, ऊपर-नीचे, टेढ़ी-तिरछी और चुभती नजरसे किसीको न देखे। बन्दरों-जैसी चंचल दृष्टि न रखे। दृष्टिको पक्की करनेका, एकाग्र करनेका अभ्यास करे।

× × ×

सवाल है कि आँखें भटकती क्यों हैं?

केवल इसलिये कि उनमें रूपकी प्यास छिपी बैठी है।

रंगोंके उभारमें, आकृतियोंके टेढ़े-तिरछेपनमें, शरीरके भिन्न-भिन्न अंगोंमें हम रूप और सौन्दर्यकी कल्पना कर लेते हैं। उनमें हमारी रमणीय बुद्धि हो जाती है। आँखोंके रास्ते हम उस रूपका स्पर्श करना चाहते हैं। आँखों-ही-आँखोंमें हम उसे पी लेना चाहते हैं, समेट लेना चाहते हैं।

परंतु असलियत क्या है?

जिस शरीरको हम रूपवान्, सौन्दर्यवान्, लावण्यवान् समझते हैं, जिन अंगोंमें हम लालित्यकी, लावण्यकी, रमणीयताकी कल्पना करते हैं, उनके आवरणको हटाकर हमने कभी देखा है? चमड़ेके पर्देको उघारकर हमने कभी भीतर झाँकनेकी चेष्टा की है?

× × ×

कहते हैं कि एक विधवा युवतीपर एक जमींदार बुरी तरह आसक्त हो गया। निराश्रिता अबलाने बचावकी कोई सूरत न देख उस कामासक्तको चार दिन बाद बुलाया।

और चार दिन बाद, मनमोदक खाते, हँसते, मुसकराते हुए वह जमींदार उक्त विधवाके घर पहुँचा तो वहाँ चारपाईपर पड़े एक नारी-कंकालको देखकर उससे पूछने लगा—कहाँ है वह युवती?

नारीकंकालने धीमे स्वरमें कहा—मैं ही तो हूँ वह युवती।

'हैं, तुम्हीं हो वह युवती?'—चौंककर पूछा उसने। 'कहाँ गया तुम्हारा वह रूप? आज तो तुम्हारे निकट खड़े होनेमें भी मुझे घृणा हो रही है।'

आँगनमें रखी एक नाँदकी ओर इशारा करते हुए युवती बोली—'वहाँ रखा है मेरा वह रूप। जाकर देख लो न!'

जमींदार नाँदकी ओर बढ़ा। देखा, उसमें मल भरा

पड़ा है। दुर्गन्धसे उसकी नाक फटने लगी। उलटे पैरों भागा वह वहाँसे।

युवतीने जमालगोटा खाकर उस कामान्ध जमींदारको दिखा दिया कि जिसे वह रूप-लावण्य समझे बैठा था, वह सारा भवन मलपर ही प्रतिष्ठित था!

× × ×

स्त्री हो या पुरुष, युवक हो या युवती, जिस किसीके भी शरीरको हम सुन्दर मानकर शलभकी भाँति आतुर होकर दौड़ते हैं, उसके भीतर आखिर भरा हुआ क्या है!

मल, मूत्र, कफ, थूक, खखार, रक्त, मांस, मज्जा आदि ही तो!

पृथक्-पृथक् देखनेसे इनमें कौन-सी वस्तु रमणीय जान पड़ती है?

× × ×

भगेन चर्मकुण्डेन दुर्गन्धेन व्रणेन च।
खण्डितं हि जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥

फिर भी दुर्गन्धपूर्ण व्रणकी भाँति सदा बहनेवाले इस चर्मकुण्डमें न जाने कितने व्यक्ति डूब गये!

कहा गया है—

'स्तनौ मांसग्रन्थी'

'मुखं श्लेष्मागारम्।'

'स्त्रवन्मूत्रक्लिन्नं जघनम्।'

इनमेंसे कौन-सी वस्तु आकर्षणकी?

परंतु हम हैं कि गड़हेमें गिरनेमें ही सुख और आनन्दकी अनुभूति करते हैं!

ठीक ही तो कहा है सन्तोंने—

गन्दगीको कीड़ो मूढ़ मानत अनन्दगी।
मायाको मजूर कूर कहा जानै बन्दगी॥

× × ×

घटना है गयाकी एक नुमाइशकी।

र⋯घूम रहे थे पत्नीके साथ।

कालेजके तीन मनचले लग गये पीछे।

र⋯की पत्नी र⋯से बोली—आप पाँच मिनटके लिये मेरे पाससे हट तो जाइये।

उनके हट जानेपर उसने उन लड़कोंको अपने पास बुलाया।

दूर खड़े पतिकी ओर इशारा करते हुए वह बोली उनसे—'जरा बताइये तो उनमें कौन-सी कमी है आप लोगोंसे? रंगमें, रूपमें, स्वास्थ्यमें, विद्यामें, बुद्धिमें आप उनसे कितना आगे हैं? फिर आपलोग क्यों आशा बाँधे मेरे पीछे फिर रहे हैं कि मैं आपमेंसे किसीकी ओर आकृष्ट होऊँगी?'

'और फिर, क्या रखा है इस शरीरमें, जिसे आप इतनी देरसे घूर-घूरकर देख रहे हैं? देखिये, ये हैं मेरे हाथ-पैर। खूब देख लीजिये एक बार जी भरकर।'

मनचले लड़कोंपर तो घड़ों पानी पड़ गया!

नुमाइशसे ऐसा मुँह छिपाकर भागे कि उलटकर ताकनेकी हिम्मत ही न पड़ी।

× × ×

हम आँख खोलकर देखें तो जिस शरीरको हम सुन्दर और आकर्षक समझते हैं, उसमें हमें भीतर गन्दगी-ही-गन्दगी दीख पड़ेगी।

'बिष रस भरा कनक घट जैसे।'

× × ×

सेंटसे सुवासित, रेशमी परिधानसे आवेष्टित, शृंगार-सज्जासे सज्जित चाहे जैसी रूपसी ऊपरसे कितनी ही आकर्षक क्यों न लगे, परंतु मानस चक्षुओंसे उसका 'पोस्टमार्टम' करके देखिये—भीतर आपको मल-मूत्रकी गन्दी नालियाँ ही बहती मिलेंगी।

× × ×

तभी न शंकराचार्यने कहा है—

नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्यामायामोहावेशम्।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय बारम्बारम्॥

पर, हम इस तथ्यपर बार-बार विचार करें तब तो!

× × ×

नारीको देखनेका एक पहलू और है।

वह जन्मदात्री है।

वह माँ है।

नारीका यह मातृरूप परम पावन है, परम पवित्र है।

सारी पशुता इसके समक्ष नतमस्तक हो जाती है। अपवित्र विचार आनन-फानन भस्म हो जाते हैं।

× × ×

रामकृष्ण परमहंसको 'सही' रास्तेपर लानेके लिये उनके कुछ 'शुभचिन्तक' उन्हें ले गये वेश्याओंके कोठेपर!

और वे उन्हें देखते ही 'माँ!' 'माँ!' कहकर समाधिस्थ हो गये!

× × ×

नारीको माँ मानते ही कुविचारोंकी कन्नी कट जाती है। हमारी परम्परा ही है—'**मातृवत् परदारेषु**' माननेकी।

आँखोंको इसका अभ्यास करा देनेसे ही काम बन सकता है।

× × ×

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

—तुलसीका यह भाव हमारे हृदयमें उतर आये फिर तो कहना ही क्या?

जगज्जननी जगदम्बा ही तो सर्वत्र व्याप्त हैं।

कोई भी नारी-मूर्ति—छोटी हो या बड़ी, सुन्दर हो या असुन्दर, काली हो या गोरी, मोटी हो या पतली—जैसे ही हमारे नेत्रोंके समक्ष पड़े, हम सोचने लगें कि यह तो जगदम्बा है, माँ है।

× × ×

आँखोंको भटकनेका और बदतमीजी दिखानेका मौका तभी मिलता है, जब हम आँखोंको इसकी छूट दे देते हैं और हम स्त्रियोंसे माँ-बहिनके पवित्र रिश्तेको छोड़कर दूसरे-दूसरे रिश्ते लगाने लगते हैं।

आँखोंको हम कसे रहें, काबूमें रखें, पलभरके लिये भी इधर-उधर भटकनेकी छूट न दें, तो अपवित्र विचार पनपनेका मौका न पा सकेंगे और अपनी मौत आप मर जायँगे।

× × ×

मतलब, हमें आँखोंको दुष्ट बालककी तरह बाकायदा ट्रेनिंग देनी होगी, जिसमें वे इधर-उधर न भटकें। उन्हें संयमित करना होगा। साम, दान, दण्ड, भेद—सभी उपायोंका आश्रय लेना होगा। उन्हें समझाना होगा। फुसलाना होगा। बदतमीजी करनेपर जोरसे डाँटना-डपटना भी होगा और ऐसा क्रोध करना होगा कि आइंदासे ऐसी शरारत की तो फोड़कर ही धर दूँगा!

जैसे भी हो आँखोंको राह—रास्तेपर लाना होगा।

× × ×

शंकराचार्यने ठीक कहा है—

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णसर्पविषादपि।
विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्ययम्॥

'दोषके मामलेमें विषय काले साँपको भी मात करते हैं। विष तो खानेवालेको मारता है, विषय तो आँखसे देखनेवालेको भी नहीं छोड़ते!'

इसलिये विषयोंसे आँख मूँद लेनेकी पूरी जरूरत है।

× × ×

आधुनिक मनोविज्ञान कहता है कि कामवासना जब जबरन् दबा दी जाती है, तब वह असंख्य मानवीय दुर्बलताओंके रूपमें प्रकट होती है।

इस मर्जकी दवा है उदात्तीकरण—Sublimation.

वासनाकी धाराको अच्छी दिशामें मोड़िये।

उच्च कलाओं, ललित कलाओंकी उपासनामें उसे लगा दीजिये।

मनन-चिन्तन, भजन-पूजन, अध्ययन, देशाटन, प्राकृतिक दृश्योंके निरीक्षण, बागवानी आदिमें उसे लगा दीजिये।

समाज-सेवा, दीन-सेवा, गोसेवा-जैसे ठोस रचनात्मक कामोंमें उसे लगा दीजिये।

तात्पर्य यह कि वासनाका परिष्कार कीजिये। प्राकृतिक सौन्दर्य देखिये, अन्त:सौन्दर्य देखिये, ईश्वरीय सौन्दर्य देखिये।

× × ×

जिस सौन्दर्यका निरीक्षण हमारे हृदयमें उदात्त भावनाएँ भरता है, पवित्र विचार जाग्रत् करता है, हमें

निर्विकार बनाता है, वह निरीक्षण ग्राह्य है, वांछनीय है, सार्थक है।

जिस सौन्दर्यका निरीक्षण हमारे हृदयमें कलुषित भावनाएँ भरता है, अपवित्र विचारोंको भड़काता है, विकारोंको उत्तेजित करता है, वह निरीक्षण घातक है, अग्राह्य है, अवांछनीय है।

यही हमारे देखनेकी कसौटी होनी चाहिये।

× × ×

अभ्यासकी बात है, फिर तो ज्ञानदेवकी भाँति कोई भी व्यक्ति दावा कर सकेगा कि 'मेरी इन्द्रियोंका स्वभाव ही ऐसा हो गया है कि जो न देखना चाहिये, उसकी तरफ आँख ही नहीं जाती, जो सुननेयोग्य नहीं है, उसे कान सुनते ही नहीं!'

× × ×

प्रकृतिके कण-कणमें, नदी और पर्वतमें, सागर और सरोवरमें, पृथ्वी और आकाशमें, वृक्षों और लताओंमें, उषा और संध्यामें, पुष्पों और पौधोंमें सर्वत्र ही सौन्दर्य भरा पड़ा है। हम आँख उठाकर देखें भी तो!

जिस सिम्त नजर कर देखे हैं,
उस दिलवरकी फुलवारी है!
कहीं सब्जीकी हरियाली है,
कहीं फूलोंकी गुल क्यारी है!!

× × ×

हमारी दृष्टि मंगलमयी हो। सर्वत्र हम शुभके ही, पवित्रके ही, मंगलके ही दर्शन करें। सत्यं शिवं सुन्दरम्‌की ही झाँकी करें।

फिर तो—

जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।
कि हर शयमें जलवा तेरा हू बहू है॥

और—

निगह अपनी हक़ीकत आशना मालूम होती है।
नज़र जिस शयपर पड़ती है, खुदा मालूम होती है॥

× × ×

तब कहाँ ठहरेगा पाप? कहाँ ठहरेगी वासना? कहाँ ठहरेंगे अपवित्र विचार।

कहते हैं कि एक व्यक्ति किसी भक्त स्त्रीपर आसक्त हो गया।

भक्त-स्त्रीने उसे दूसरे दिन जिस समय बुलाया, उस समय वह साधुओंकी मण्डलीमें बैठी थी।

उसे आया देख वह बोली—तुम अपनी कामना पूरी करो न!

झिझकता हुआ बोला वह—उसके लिये तो एकान्त न चाहिये!

भक्त स्त्री बोली—मेरे भगवान् तो सर्वत्र हैं। एकान्त मिलेगा कहाँ?

लजाकर वह कामान्ध व्यक्ति गिर पड़ा उस देवीके चरणोंपर।

प्रभुको सर्वव्यापी मानते ही पाप-ताप टिक ही कहाँ सकते हैं!

× ×

काश, स्वामी रामतीर्थकी भाँति हम सोच पाते—

'ये तारे-सितारे, ये चन्द्र-सूर्य, ये झलकती हुई नदियाँ, यह सांसारिक रूप-सौन्दर्य—उस सचाईके गिरे-पड़े मोती हैं। जिसके गिरे-पड़े मोतियोंका यह हाल है, उसका अपना क्या हाल होगा!.............'

लगाकर पेड़ फूलोंके, किये तकसीम गुलशनमें।
जमाया चाँद सूरजको, सजाये क्या सितारे हैं॥

× × ×

दांत न थे तब दूध दियो अब दांत दिए तो अन्न न दैहें?
जीव बसैं जल में थल में सबकी सुधि लेय सो तेरी भी ले हैं।
काहे को सोच करें मन मूरख सोच करे कुछ हाथ न ऐहैं,
जान को देत अजान को देत जहान को देत सो तोकू न दैहें?

भगवच्चर्चा—

प्रेम-तत्त्व

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

❀ वह प्रेम प्रेम नहीं है, जिसका आधार किसी इन्द्रियका विषय है।

❀ नियमोंके सारे बन्धनोंका अनायास आप-से-आप टूट जाना ही प्रेमका एकमात्र नियम है।

❀ जबतक नियम जान-बूझकर तोड़े जाते हैं, तबतक प्रेम नहीं है, कोई-न-कोई आसक्ति तुमसे वैसा करवा रही है। प्रेममें नियम तोड़ने नहीं पड़ते, परंतु उनका बन्धन आप-से-आप टूट जाता है।

❀ प्रेममें एक विलक्षण मत्तता होती है, जो नियमोंकी ओर देखना नहीं जानती।

❀ प्रेममें भी सुखकी खोज होती है, परंतु उसमें विशेषता वही है कि वहाँ प्रेमास्पदका सुख ही अपना सुख माना जाता है।

❀ प्रेमास्पदके सुखी होनेमें यदि प्रेमीको भयानक नरक-यन्त्रणा भोगनी पड़े तो उसमें भी उसे सुख ही मिलता है; क्योंकि वह अपने अस्तित्वको प्रेमास्पदके अस्तित्वमें विलीन कर चुका है।

❀ अपना सुख चाहनेवाली तो वेश्या हुआ करती है, जिसके प्रेमका कोई मूल्य नहीं। पतिव्रता तो अपना सर्वस्व देकर भी पतिके सुखमें ही सुखी रहती है, क्योंकि वह वास्तवमें एक पतिके सिवा अन्य किसी पदार्थको 'अपना' नहीं जानती।

❀ प्रेमास्पद यदि प्रेमीके सामने ही उसकी सर्वथा अवज्ञाकर किसी नवीन आगन्तुकसे प्रेमालाप करे तो इससे प्रेमीको क्षोभ नहीं होता, उसे तो सुख ही होता है; क्योंकि इस समय उसके प्रेमास्पदको सुख हो रहा है।

❀ जो वियोग-वेदना, अपमान-अत्याचार और भय-भर्त्सना आदि सबको सहन करनेपर भी सुखी रह सकता है, वही प्रेमके पाठका अधिकारी है।

❀ प्रेम जबानकी चीज नहीं, जहाँ लोक-परलोकके अर्पणकी तैयारी होती है, वहीं प्रेमका दर्शन हो सकता है।

❀ प्रेमके दर्शन बड़े दुर्लभ हैं, सारा जीवन केवल प्रतीक्षामें बिताना पड़े, तब भी क्षोभ करनेका अधिकार नहीं।

❀ प्रेम खिलौना नहीं है, परंतु धधकती हुई आग है। जो सब कुछ भुलाकर उसमें कूद पड़ता है, वही उसे पाकर कृतार्थ होता है।

❀ प्रेमका आकार असीम है, जहाँ संकोच या सीमा है, वहाँ प्रेमको स्थान नहीं।

❀ प्रेम प्रेमके लिये ही किया जाता है और इसकी साधनामें बिना विरामके नित्य नया उत्साह बढ़ता है।

❀ प्रेम अनिर्वचनीय है, प्रेमका स्वरूप केवल प्रेमियोंकी हृदय-गुफाओंमें ही छिपा रहता है। जो बाहर आता है, सो तो उसका कृत्रिम स्वरूप होता है।

❀ भगवान् श्रीरामने देवी सीताजीको सन्देश कहलवाया था—

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

❀ कबीरने कहा है—

प्रेम न बाड़ी नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देहि लै जाय॥
जब 'मैं' था तब 'हरि' नहीं, अब 'हरि' हैं 'मैं' नाहिं।
प्रेम-गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥

❀ जिनको भगवान्‌की लगन लग जाती है, वे तो उसीके लिये मतवाले हो जाते हैं, उन्हें दूसरी चर्चा सुहाती ही नहीं, दूसरी बात मन भाती ही नहीं, विषय-सुखकी तो बात ही क्या है, वे ब्रह्माके पदको भी नहीं चाहते।

❀ जिनको भगवान्‌से प्रेम हो गया है और जो अपने उस परम प्रेमीके चिन्तनमें ही सदा चित्तको लगाये रखते हैं, वे सारे त्रैलोक्यका वैभव मिलनेपर भी आधे क्षणके लिये भी चित्तको प्रियतमके चिन्तनसे नहीं हटाते। ऐसा भागवतकार कहते हैं।

❀ जो भगवान्‌के प्रेमी हैं, उन्हें यदि भगवत्प्रेमके लिये नरकयन्त्रणा भी भोगनी पड़े, तो उसमें भी उन्हें भगवदिच्छा जानकर आनन्द ही होता है। उन्हें नरक-स्वर्ग या दु:ख-सुखके साथ कोई सरोकार नहीं। वे तो जहाँ, जिस अवस्थामें अपने प्रियतम भगवान्‌की स्मृति रहती है, उसीमें परम सुखी रहते हैं, इसीसे देवी कुन्तीने दु:खका वरदान माँगा था।

नवीन मनोविज्ञान और योग

(पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए०, बी०टी०)

नवीन मनोविज्ञानने जो मनके स्वरूपपर प्रकाश डाला है, उससे भारतवर्षके योगशास्त्रके सिद्धान्तोंकी मौलिकता प्रमाणित होती है। नवीन मनोविज्ञानके कथनानुसार हमारा प्रत्येक क्षणका अनुभव—चाहे वह प्रिय हो या अप्रिय, भला हो अथवा बुरा, अपने संस्कार मनपर अंकित कर जाता है। मन उस चलचित्रके सदृश है, जिसमें चलते-फिरते, बोलते, हँसते-रोते सब लोगोंके तथा स्थिर और गतिमान् सब पदार्थोंके चित्र बनते जाते हैं। ये चित्र सदा मनमें अंकित रहते हैं और हमारे व्यक्तित्वके बननेके कारण होते हैं। हमारा कोई भी अनुभव व्यर्थ नहीं जाता। हमारे बहुत-से अनुभव प्रयत्न करनेपर हमें स्मरण होते हैं और बहुत-से स्मृति-पटलपर नहीं आते; किन्तु स्मरण होनेवाले और स्मरण न होनेवाले सभी अनुभव हमारी मानसिक फिल्ममें विद्यमान रहते हैं। एक बार जो फिल्म बन जाती है, वह हमारे मनके किसी अदृश्य भागमें गुप्त रहती है। समय आनेपर यह फिल्म पुनः प्रकाशित होती है।

हमारे अनुभव दो प्रकारके होते हैं—प्रिय और अप्रिय। अपने अप्रिय अनुभवोंको हम भुला देनेकी चेष्टा करते हैं; किंतु इन अप्रिय अनुभवोंके संस्कार हमारी इस चेष्टासे नष्ट नहीं होते, वे और भी अधिक दृढ़तासे मनपर अंकित हो जाते हैं। फिल्मके संस्कारोंमें और मनके संस्कारोंमें एक मौलिक भेद है। फिल्मके संस्कार अप्रकाशित अवस्थामें रहकर स्वयं कुछ कार्य नहीं करते। वे जबतक चित्रपटके ऊपर प्रकाशित नहीं किये जाते, जैसे-के-तैसे निष्क्रिय अवस्थामें बने रहते हैं। किंतु मनकी फिल्मके संस्कार क्रियमाण होते हैं। वे मनके अदृश्य भागमें रहकर भी कुछ-न-कुछ काम करते रहते हैं। वे सदा अपने-आप प्रकाशित होनेके लिये सचेष्ट रहते हैं तथा उनके प्रकाशित होनेमें बाधा डालनेवाली सत्ताके कार्यमें विघ्न डालते रहते हैं। इन संस्कारोंको जितना ही अधिक चेतन मनमें आनेसे रोका जाता है, ये उतने ही प्रयत्नके साथ आनेकी कोशिश करते हैं एवं ये शुभ और अशुभ संस्कार वासनाका रूप धारण कर लेते हैं। सभी वासनाओं (इच्छाओं)-का मूल कारण मनका वातावरणके समीप आना है। अर्थात् हमारे मानसिक संस्कारोंके ऊपर हमारी इच्छा निर्भर रहती है।

जब हमारा चेतन मन किसी इच्छाको प्रयत्नपूर्वक प्रकाशित होनेसे दबाता है, तो वह रूपान्तरित होकर प्रकाशित होती है। प्रत्येक वासना एक मानसिक शक्ति है। यह शक्ति जितनी ही दबायी जाती है, उसका बल उतना ही अधिक बढ़ जाता है और उतनी ही प्रबलताके साथ प्रकाशित होनेकी चेष्टा करती है। वह अपने प्रकाशनके लिये एक नये संस्कारका निर्माण कर लेती है। सांकेतिक चेष्टाएँ, बीमारियाँ, अनर्गल बकना, स्वप्न, दिवास्वप्न, हिस्टीरिया तथा अनेक प्रकारकी विक्षिप्तता दबी हुई वासनाके प्रकाशित होनेके प्रयत्न-स्वरूप होती हैं। जब मनुष्य अपनी हार्दिक इच्छाके प्रतिकूल कोई कार्य करता है, तो उसके जीवनकी सरलता नष्ट हो जाती है और उसमें अनेक प्रकारकी विक्षिप्तता और शारीरिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

मनोविश्लेषण-विज्ञानने मनके तथा शरीरके रोगोंसे मुक्त होनेका उपाय बताया है। मनोविश्लेषण मानसिक चेष्टाओंका अध्ययन करके, उसके स्वप्नोंको जानकर व्यक्तिकी दबी हुई वासनाकी खोज करता है। इसी दबी वासनाको जब विक्षिप्त व्यक्तिके चेतनापर ले आया जाता है और उससे इसे स्वीकार करा लिया जाता है तो रोगका अन्त हो जाता है। फ्रॉयड महाशयके मनोविश्लेषणद्वारा चिकित्साका प्रधान कार्य मनकी दबी वासनाओंको रोगीकी चेतनाके समक्ष लानामात्र था; इसके लिये वे रोगीकी सांकेतिक चेष्टाओं एवं स्वप्नोंका अध्ययन करते थे और सम्मोहन आदिके द्वारा दबी वासनाको जाननेकी चेष्टा करते थे। यह वासना जब रोगीके चेतन मनके समक्ष लायी जाती थी और उससे स्वीकार करायी जाती थी, तो उसके रोगका अन्त हो जाता था। फ्रॉयडकी इस विधिको रेचन-विधि (केथार्सिस) कहा जाता है।

होमर लेन महाशयने फ्रॉयडकी रेचनविधिसे काम तो लिया, किंतु उन्होंने स्वास्थ्य-लाभ करनेके लिये मानसिक रेचनको पर्याप्त न समझा। मानसिक रेचन रोग (वासना)-से मुक्त होनेका एक उपाय है; किन्तु स्थायी मानसिक स्वास्थ्यके लिये उन्होंने स्वास्थ्यवर्द्धक औषध देना उतना ही आवश्यक समझा, जितना कि रेचन। यह स्वास्थ्यवर्द्धक औषध मनमें नये सत्संस्कारोंको जमाना है। बुरे संस्कारोंका

प्रतिकार भले संस्कारोंसे होता है। हम साधारण चिकित्सामें देखते हैं कि बहुत-से जटिल रोगोंमें रेचन व्यर्थ ही नहीं, हानिकारक होता है और स्वास्थ्य-लाभके लिये स्वास्थ्यवर्द्धक औषधियाँ देना आवश्यक होता है। ये औषधियाँ अज्ञातरूपसे कार्य करती हैं और रोगीको मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करनेमें समर्थ होती हैं। इसी तरह नये शुभ संस्कारोंका दृढ़ करना पुराने संस्कारोंका, जो रोगके रूपमें उद्भूत होते हैं, विनाशक होता है। होमर लेन महाशयकी इस प्रक्रियाको पुनः शिक्षाकी प्रक्रिया (रि-एजुकेशन) कहा गया है। इस प्रक्रियाके द्वारा होमर लेनने बड़े-बड़े जटिल रोगियोंको उनके शारीरिक और मानसिक रोगोंसे मुक्त किया है।

इस तरह हम देखते हैं कि मनोविश्लेषण-विज्ञानने मानसिक रोगोंसे उन्मुक्त होनेके दो उपाय बताये हैं—एक अपनी वासनाओंकी आत्मस्वीकृति और दूसरी नये शुभ संस्कारोंका दृढ़ करना। चित्त-विश्लेषण-विज्ञानने यह दर्शानेकी चेष्टा नहीं की है कि मनुष्य मानसिक यन्त्रणाकी सम्भावनासे सर्वथा कैसे मुक्त हो। स्वयं फ्रॉयड महाशयका इस विषयमें निष्कर्ष निराशात्मक है। उन्होंने अपनी 'सिविलाइजेशन डिसकन्टेन्ट्स' नामक पुस्तकमें यह दर्शाया है कि मनुष्य किसी प्रकार स्थायी शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। यदि वह अपनी पाशविक प्रकृतियोंका दमन करता है तो वह सभ्य भले ही कहा जाय; किंतु उसके आन्तरिक मनमें असन्तोष रहता है, जिसके कारण अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती है। और यदि वह अपनी पाशविक इच्छाओंको बिना रोके मनमानी करने दे, तो समाजमें किसी प्रकारका नियम न रहे; मनुष्य-समाज पशु-समाज-जैसा बर्बर हो जाय। सभ्यताका विकास प्राकृतिक इच्छाओंकी रुकावटसे होता है; सभ्यता वासनाओंके शोधका परिणाम है, पर वासनाओंके दमनसे मानसिक रोगोंकी उत्पत्ति भी होती है। वासनाओंका पूर्णतः शोध करना सम्भव नहीं। ऐसी अवस्थामें मनुष्य असन्तोषसे किसी प्रकार भी नहीं बच सकता।

नवीन मनोविज्ञान जिस ध्येयकी प्राप्तिमें अपनी कमीकी अनुभूति करता है, योग उस ध्येयके प्राप्त करनेका योग्य साधन बताता है। नवीन मनोविज्ञान और योगमें कई बातोंमें समता है और कईमें विषमता है। नवीन मनोविज्ञानका ध्येय मानसिक चिकित्सा है, इसी तरह योगका ध्येय भी मानसिक चिकित्सा है। जिस प्रकार नवीन मनोविज्ञान मनकी खोज करता है, उसी प्रकार योग भी मनकी खोज करता है और जिस प्रकार नवीन मनोविज्ञानके पण्डित स्वास्थ्य-लाभके लिये अपनी वासनाओंकी आत्मस्वीकृति (रेचन)-को तथा पुनः शिक्षाको आवश्यक समझता है। पर दोनोंकी स्वास्थ्य-लाभकी प्रक्रियामें भौतिक भेद भी है। इनकी ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है।

नवीन मनोविज्ञान मानसिक स्वास्थ्य-लाभकी डॉक्टरी विधि है। डॉक्टर अपनेसे अतिरिक्त दूसरे रोगियोंकी चिकित्सामें कुशल होता है, वह अपने-आपकी चिकित्सामें उतना कुशल नहीं होता। इसी तरह चित्त-विश्लेषक दूसरोंके चित्त-विश्लेषणमें जितनी कुशलता दिखाता है, आत्मज्ञानमें उतनी कुशलता नहीं दिखाता। योग आत्मज्ञानकी चेष्टाका नाम है। चित्त-विश्लेषक दूसरोंके मनके अध्ययनद्वारा अपने मनको जानता है। योगी अपने मनको समझकर दूसरेके मनकी गति-विधिका अनुमान करता है। नवीन मनोवैज्ञानिक पर-चिकित्सामें दत्तचित्त होता है। पर योगीके समक्ष एक ही रोगी है, जिसकी उसे भली प्रकारसे चिकित्सा करनी है और वह रोगी आप ही है। चित्त-विश्लेषककी दृष्टि बहिर्मुखी होती है, जैसी कि प्रत्येक वैज्ञानिककी दृष्टि होती है। इसके प्रतिकूल योगीकी दृष्टि अन्तर्मुखी होती है, जो दार्शनिक दृष्टि है।

मनोविश्लेषक रोगके निदानके अध्ययनमें ही अधिक समय लगाता है; उसकी चिकित्सामें उतना समय नहीं लगाता। यह दृष्टि पाश्चात्य चिकित्साशास्त्रकी दृष्टि है; प्राच्य चिकित्साशास्त्रमें निदानके अध्ययनपर उतना जोर नहीं दिया जाता, जितना कि चिकित्सापर दिया जाता है। आयुर्वेदिक उपचारसे कितने ही रोग बिना निदानके सम्पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। वैद्य कभी-कभी रोगको नहीं जानता, रोगके कारणको जानता है और वह इस कारणको हटानेकी चेष्टा करता है। कितने ही मनोविश्लेषक रोगसे रोगीको मुक्त करनेमें असमर्थ इसलिये होते हैं कि वे निदानका ही अध्ययन किया करते हैं।

मनोविश्लेषण-विज्ञान और योगकी दृष्टिका एक भेद यह है कि जहाँ मनोविश्लेषण रोगकी चिकित्सापर अपना ध्यान केन्द्रित करता है, योग रोगकी रोकपर ध्यान केन्द्रित करता है। रोगका रोकना उसकी चिकित्सासे कहीं अच्छा है। इस सिद्धान्तको ध्यानमें रखकर योग मनुष्योंको ऐसी शिक्षा देता है, जिससे उन्हें मानसिक रोग उत्पन्न ही न हों। सभी

मानसिक एवं शारीरिक रोगोंका कारण मनके कुसंस्कार होते हैं। प्रबल वासनाएँ बन जाती हैं, जिनके कारण अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती है। संस्कारोंकी प्रबलता बाह्य विषयोंमें रुचि रखनेके कारण होती है। जिस पदार्थमें जितनी अधिक रुचि दर्शायी जाती है, उसके संस्कार मनपर उतने ही प्रबल होते हैं। यह अमिट मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है। रुचिकी उत्पत्ति विषयोंके चिन्तनसे होती है; जिस विषयका हम जितना चिन्तन करते हैं, उसमें उतनी ही अधिक रुचि हो जाती है। यदि हम बाह्य विषयोंमें अपनी रुचि मिटाना चाहते हैं तो हमें अन्तर्मुखी होना पड़ेगा।

योग मनुष्योंको सुखी बनानेका एक ही मार्ग बताता है। यह मार्ग विषय-विरत होना है। अभ्यास और वैराग्यके द्वारा मनुष्य अन्तर्मुखी होता है। हमारा मन बार-बार बाह्य विषयोंपर जाता है, उसे हमें बार-बार रोकना पड़ेगा। योगकी शिक्षाके अनुसार किसी विषयसे ममता जोड़ना अपने आपके लिये दु:खकी सृष्टि करना है। बार-बार बाह्य विषयोंका चिन्तन उनमें प्रीति उत्पन्न करता है, प्रीति होनेपर उन्हें पानेकी इच्छा उत्पन्न होती है। इच्छाके अतृप्त रहनेपर अनेक मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं, मनुष्यकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और उसके सुखका अन्त हो जाता है।

योग नवीन मनोविज्ञानकी चिकित्साकी प्रक्रियाको अपनाता है। पर नवीन मनोविज्ञानकी विधि अधिकतर विश्लेषणात्मक है। डॉक्टर होमर लेनको छोड़कर किसी भी चित्त-विश्लेषकने सृजनात्मक विधिका प्रयोग नहीं किया। फ्रॉयड महाशयने रेचन-विधि-मात्रका प्रयोग किया। योग इस विधिको उतना लाभदायक नहीं समझता, जितना कि सृजनात्मक विधिको समझता है, जिसे डॉक्टर होमर लेनने 'पुन: शिक्षा' के नामसे संकेत किया है। उस विधिकी उपयोगिता विश्लेषणात्मक विधिकी उपयोगितासे कहीं अधिक है। एक तरहसे देखा जाय तो योगकी विधि मनोविश्लेषकोंकी विधिसे कहीं सरल है। इसका अभ्यास कोई भी व्यक्ति कर सकता है और उसका फल हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष देख सकता है।

प्रत्येक मानसिक ग्रन्थि किसी दुर्वासना या दुर्भावनाके कारण उत्पन्न होती है। योग आदेश करता है कि इन दुर्भावनाओंके संस्कारोंके नष्ट करनेके लिये मनुष्यको प्रति भावना करनी चाहिये। आध्यात्मिक शान्तिके उपार्जनके लिये मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षाका अभ्यास करना आवश्यक है। ईर्ष्या, क्रोध और वैरजनित मानसिक ग्रन्थियोंका प्रतीकार मैत्री, करुणा और मुदिता भावनाके अभ्याससे होता है। उपेक्षा अहंकार-विनाशक है। पदार्थोंमें दोष-दृष्टि तथा उनकी नश्वरतापर विचार काम और लोभको नष्ट करते हैं। इस तरह हमारी अनेक मानसिक ग्रन्थियाँ आप ही नष्ट हो जाती हैं।

मनोविश्लेषण-विज्ञानके द्वारा अस्थायी रोगकी निवृत्ति होती है। योगके द्वारा मनुष्यके स्थायी रोगकी निवृत्ति है। सम्पूर्ण मानव-समाज क्लान्तचित्त रहता है। जब किसी विशेष व्यक्तिका मानसिक क्लेश अत्यधिक बढ़ जाता है, तब वह शारीरिक और मानसिक रोगोंके रूपमें उपस्थित होता है। पर जिन लोगोंको हम स्वस्थ समझते हैं, वे भी पूर्णतया रोगसे मुक्त नहीं हैं। वे अभी रोगी नहीं होते, पर उनके मनमें रोगकी तैयारी होती रहती है। मनुष्यका वास्तविक रोग मानसिक रोग है। यह रोग कभी व्यक्त होता है और कभी मनुष्यके अव्यक्त मनमें ही रहता है। जब यह रोग व्यक्त होता है, तब हम मनुष्यको रोगी कहते हैं। पर रोगका इस प्रकार व्यक्त होना वास्तविक रोगके लक्षणोंका दर्शनमात्र है। मानसिक तथा शारीरिक चिकित्सक प्राय: बाहरी रोगोंका उपचार ही किया करते हैं, इस प्रकारका उपचार रोगके लक्षणोंका उपचार करना है। योगी रोगकी जड़को नष्ट करनेकी चेष्टा करता है। उसकी चिकित्साका परिणाम तुरंत नहीं दिखायी देता; पर उसकी चिकित्सा स्थायी लाभ पहुँचाती है।

मनुष्य अपने दृष्टिकोणको बदलकर ही स्थायी शान्ति-लाभ कर सकता है। हमारा सुख हमारे अन्दर है। इस सुखकी खोज आत्मासे बाहर की जाती है। यही मनोवृत्ति अनेकों प्रकारके मानसिक क्लेशोंका मूल कारण है। इस मनोवृत्तिके बदलनेपर स्थायी शान्तिकी प्राप्ति होती है। मनुष्यके मानसिक तथा शारीरिक रोग उसे आत्मचिन्तनके लिये बाध्य करते हैं। यदि मनुष्य अपने-आप ही आध्यात्मिक चिन्तनमें लग जाय तो उसे रोग ही न हों।

यौगिक और नवीन मनोविज्ञानकी चिकित्साके परिणाम भी विरोधी हैं। एक मनुष्यको स्वावलम्बी बनाता है, और दूसरा परावलम्बी। दूसरोंद्वारा की जानेवाली चिकित्सा आत्मविश्वासको शिथिल करती है; अपने-आप की गयी चिकित्सा आत्मविश्वासको दृढ़ करती है।

साधकोंके प्रति—

दृश्यमात्र अदृश्यमें जा रहा है

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

एक बड़ी सीधी बात है, उसे ठीक तरहसे समझ लें तो बड़ी अच्छी तरह साधन चल पड़ेगा। जैसे गंगाजीका प्रवाह चलता है, इसे मान लिया और जान लिया, तो फिर कभी सन्देह नहीं होगा कि प्रवाह चलता है या नहीं चलता। तो जैसे गंगाजीका प्रवाह चल रहा है, वैसे संसारका प्रवाह चल रहा है। यह सब-का-सब संसार निरन्तर अदृश्यकी तरफ जा रहा है। ये दीखनेवाला सब प्रतिक्षण न दीखनेमें जा रहा है। जो कल दीखता था, वह आज नहीं दीखता है। थोड़ा विचार करके देखें कि कल जो शरीर था, वह आज नहीं है। प्रतिक्षण बदल रहा है। इस प्रकार दृश्य प्रतिक्षण अदृश्य हो रहा है। सीधी-सरल बात है। सीखनेकी कोई जरूरत नहीं है। चाहे मान ले, चाहे जान ले। यह सब-का-सब जा रहा है। इसमें कोई सन्देह हो तो बोलो! जिस दिन कोई मर जाता है तो कहते हैं कि आज वह मर गया। पर वास्तवमें जिस दिन जन्मा, उसी दिनसे उसका मरना शुरू हो गया था और वह मरना आज पूरा हुआ है।

जो अवस्था अभी है, वह प्रतिक्षण जा रही है। धनवत्ता और निर्धनता, आदर और निरादर, मान और अपमान, बलवत्ता और निर्बलता, सरोगता और नीरोगता इत्यादि जो भी अवस्था है, वह सब जा रही है। अब इसमें क्या राजी और क्या नाराज होवें? इस बातको समझनेके बाद इसपर दृढ़ रहें। अभी कोई आकर कहे कि अमुक आदमी मर गया, तो भीतर भाव रहे कि नयी बात क्या हो गयी? जो बात प्रतिक्षण हो रही है, वही तो हुई। यदि इसमें कोई नयी बात दीखती है तो दृश्य हर समय अदृश्यमें जा रहा है—इस तरफ दृष्टि नहीं है, तभी मरनेका सुनकर चिन्ता होती है, मनमें चोट लगती है। यह तो मृत्युलोक है। मरनेवालोंका ही लोक है। यहाँ सब मरने-ही-मरनेवाले रहते हैं। मृत्युके सिवाय और है ही क्या? प्रत्यक्षमें ही सब कुछ अभावमें जा रहा है। इस बातको ठीक तरह समझ लो। जो जीवन है, वह मृत्युमें जा रहा है। अभीतक जितने दिन जी गये, उतना मर ही गये, जी गये, यह बात तो झूठी है। और मर गये, यह बात बिलकुल सच्ची है। इस बातको समझना है, याद नहीं करना है।

अब कहो कि जितने दिन जी गये, उसमें मरनेकी क्रिया दिखायी नहीं देती। तो विचार करें कि यदि काले बाल नहीं मरते तो आज बाल सफेद कैसे हो गये? आप कहें कि रूपान्तरित हो गये, तो मरनेमें क्या होता है? रूपान्तर ही तो होता है। पहले जैसा जीता हुआ दीखता था, वैसे अब नहीं दीखता। आधी उम्र आपकी चली गयी, तो आधा मर ही गये। आधी उम्र चली गयी—यह बात तो आप मानते हो, पर आधा मर गये—यह आपकी समझमें नहीं आता। पर वास्तवमें एक ही बात है। केवल शब्दोंमें अन्तर है, भावमें बिलकुल अन्तर नहीं। सुननेमें कड़ा इसलिये लगता है कि जीनेकी इच्छा है। पर बात सच्ची है। आधी उम्र चली गयी—यह बात जँचती है, तो जँची हुई बातको ही मैं पक्का करता हूँ। इतना ही मेरा काम है। मैं कोई नयी बात नहीं सिखाता। तीन बातें होती हैं—सीखी हुई, मानी हुई और जानी हुई। उसे पक्का मान लो, पक्का जान लो—इतना ही मेरा कहना है। फिर बात हमेशा जाग्रत् रहेगी। उसमें सन्देह नहीं होगा। तो जितनी उम्र बीत गयी, उसमें सन्देह होता है क्या? सन्देह नहीं होता तो उतना मर गया—इसमें सन्देह कैसे रह गया? शरीर हरदम जा रहा है, यह बात बिलकुल सच्ची है।

मैं अपनी बीती बात बताऊँ कि जिस दिन मैंने यह समझा कि यह दृश्य अदृश्यमें जा रहा है, मुझे इतनी प्रसन्नता हुई कि ओहो! कितनी मार्मिक बात है! कितनी बढ़िया बात है! मैं ठगायी नहीं करता हूँ, झूठ नहीं बोलता हूँ। आप थोड़ा ध्यान दो कि शरीर मरनेकी तरफ जा रहा है कि जीनेकी तरफ? बिलकुल सच्ची बात है कि यह तो मरनेकी तरफ जा रहा है। दृश्य अदृश्यकी तरफ जा रहा है, तो यह मरनेकी तरफ जा रहा है। दृश्य अदृश्यमें जा रहा है तो वह भी मरनेकी तरफ जा रहा

है। मेरे मनमें बात आयी कि जैसे बालक पाठ पढ़ता है तो उसे क, ख, ग, घ एक बार याद हो गये, तो फिर याद हो ही गये। फिर उससे पूछो तो वह तुरन्त बता देगा। याद नहीं करना पड़ेगा। तो ऐसे आप भी चलते-फिरते हरदम याद कर लो कि यह सब जा रहा है। दृश्य अदृश्यमें जा रहा है। भाव अभावमें जा रहा है। जीवन मृत्युमें जा रहा है। दर्शन अदर्शनमें जा रहा है। इस प्रकार इसे हरदम याद रखो तो अपने-आप इसका प्रभाव पड़ जायगा और बड़ा भारी लाभ होगा। बालककी तरह इस पाठको सीख लो। जितना सुखका लोभ है, जितना जीनेका लोभ है, उतना इस बातका आदर नहीं है। लोभ और आदर दो चीजें हैं। इस बातका आदर कम है, लोभका आदर ज्यादा है। आदर कम है, यही भूल है। तो आजसे ही इस बातका आदर करो।

मैं कौन हूँ ?

[Who Am I?]

क्या मैं वह शरीर हूँ, जो पैदा होता है, बढ़ता है और अन्ततः विघटित होकर पृथ्वीके तत्त्वोंमें मिल जाता है?

क्या मैं मन, बुद्धि और अहंकार हूँ, जो शरीरके शेष होनेके साथ ही नष्ट हो जाते हैं?

क्या मैं समयके अनन्त सागरमें जीवनका एक क्षणभंगुर, छोटा-सा बुलबुला हूँ, जो मृत्युके साथ शून्यतामें विलीन हो जाता है?

क्या जीवन और मृत्यु दोनोंमें पीड़ा प्राप्त करना ही मेरी नियति है?

नहीं!

आप एक स्थूल नश्वर शरीर अथवा सूक्ष्म मन, बुद्धि या अहंकार नहीं!

आप एक अमर आत्मा हैं, जो शरीरकी मृत्युके बाद भी जीवित बच जाती है!

आप समयके अनन्त सागरमें एक बुलबुला नहीं—एक देहमें अस्थायी रूपसे अवस्थित उस महान् ईश्वरका ही एक अनन्य अंश हैं!

सदा पीड़ामें रहनेकी बाध्यता आप इसलिये महसूस करते हैं; क्योंकि आप अपनी वास्तविक पहचान भूल गये हैं!

भगवद्गीता आपको अपनी स्मृति वापस पाने, ईश्वरत्व प्राप्तकर प्रकृतिके बन्धनोंसे ऊपर उठने और सभी पीड़ाओंको हमेशाके लिये विदा करनेमें मदद करेगी।

Am I the body that is born, grows and eventually disintegrates into elements of the earth?

Am I the mind, intelligence and ego, which dissipate with the disintegration of the body?

Am I just a transient, little bubble of life in the infinite ocean of time that fades away into nothingness with death?

Am I condemned to suffer while I live and die?

No!

You are not the mortal body, mind, intelligence or ego! You are an immortal soul that survives after the death of the body! You are not a little bubble in the ocean of eternity: you are a portion of God temporarily lodged in a body. You feel condemned to suffer because you have forgotten your true identity! The Bhagavad-Gita will help you regain your memory, rise above the reign of Nature, and acquire Godhood to eliminate all suffering forever!

[सोशल मीडियासे साभार]

कहानी—

जहाँ प्रेम है, वहीं ईश्वर है

(लियो टॉलस्टाय)

[वेदोंका उद्‌घोष है—'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः'—सभी दिशाओंसे अच्छे विचार हमें प्राप्त हों—इसी वैश्विक मानवीय चेतनाको उद्भासित करनेवाली टॉलस्टायकी एक कालजयी रचनाका अनूदित रूप यहाँ पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। देश-कालकी भिन्नताके कारण रहन-सहनके तौर-तरीके स्वाभाविक ही भिन्न होते हैं, किंतु मूल रूपसे मानवीय संवेदना और दया-करुणाका प्रवाह वैश्विक है तथा प्रभुकी प्राप्तिका वह सहज साधन है—इसी भावको स्पष्ट करती इस कहानीको प्रस्तुत करनेका यही कारण है।—सम्पादक]

किसी नगरमें मार्टिन नामका एक मोची रहता था। उसकी कोठरीकी एक खिड़की सड़ककी ओर खुलती थी। पर उसमेंसे सड़कपर चलनेवालोंके केवल जूते ही देखे जा सकते थे। मार्टिन भी जूतोंसे ही लोगोंको पहचान लेता था। उसके पास-पड़ोसमें शायद ही कोई जूता होगा, जो किसी-न-किसी उपचारके लिये उसके हाथोंमेंसे न गुजरा हो। किसीकी सिलाई की थी, तो किसीका तलवा लगाया था। कामकी उसके पास कमी नहीं थी; क्योंकि वह अच्छी मरम्मत करता था और सामान भी अच्छा लगाता था। वह दाम भी कम लेता था, झूठे वादे भी वह नहीं करता था।

वैसे तो मार्टिन सारे जीवन ही भला व्यक्ति रहा था; किंतु अपनी वृद्धावस्थामें उसने आत्मा और ईश्वरके बारेमें अधिक चिन्तन किया था। अपना निजी काम शुरू करनेसे पहले जब वह एक जगह नौकर था, तभी उसकी पत्नी चल बसी थी। तब मार्टिनका पुत्र केवल तीन वर्षका था। पहले तो मार्टिनने उसे अपनी बहिनके पास, जो गाँवमें रहती थी, भेजनेका निश्चय किया; किंतु फिर उसे अपनेसे अलग करते हुए उसे दुःख हुआ।

मार्टिनने नौकरी छोड़ दी और अपने नन्हे पुत्रके साथ इस कोठरीमें जाकर रहने लगा; परंतु उसके भाग्यमें संतानका सुख नहीं बदा था। उस आयुपर पहुँचकर जब वह अपने पिताकी कुछ सहायता करता, उसका बच्चा बीमार पड़ा और एक सप्ताहके तेज ज्वरके बाद चल बसा। मार्टिनने दुःखसे विकल होकर ईश्वरको खूब कोसा। तीव्र वेदनाके वश उसने कई बार चाहा कि मृत्यु उसे भी इसी प्रकार उठा ले। अपने प्रिय पुत्रके छीने जानेपर वह ईश्वरकी निन्दा करने लगा, उसने मन्दिर जाना भी छोड़ दिया।

एक दिन मार्टिनके गाँवका एक बूढ़ा धर्माचार्य तीर्थयात्रासे लौटते हुए उसके पास ठहरा। मार्टिनने अपना दुःख उससे कहा, 'मैं अब जीना नहीं चाहता। मैं तो ईश्वरसे यही चाहता हूँ कि मुझे मौत आ जाय, मेरे लिये अब संसारमें क्या रखा है!'

धर्माचार्यने कहा—'मार्टिन! तुम्हें इस तरह कहनेका कोई अधिकार नहीं है, हम ईश्वरके न्यायको तौल नहीं सकते। हमारे लिये तर्क नहीं, वरं ईश्वरकी इच्छा श्रेष्ठ है। यदि तुम्हारे पुत्रकी मृत्युके पीछे ईश्वरकी इच्छा थी और यदि ईश्वर चाहता है कि तुम जिन्दा रहो तो इसमें भलाई ही है। तुम्हारी निराशाका भेद तो यह है कि तुम केवल अपनी खुशीके लिये जीना चाहते हो।'

'मनुष्यको और किस हेतु जीना चाहिये?' मार्टिनने पूछा।

'ईश्वरके लिये, मार्टिन!' धर्माचार्यने उत्तर दिया, 'तुम्हें उसके लिये जीना चाहिये। जब तुम उसके लिये जीना सीख जाओगे, तब तुम्हें जरा भी दुःख नहीं होगा और तुम्हारा मार्ग अत्यन्त सुगम हो जायगा।'

मार्टिन कुछ क्षण चुप रहा, फिर उसने पूछा—'पर कोई ईश्वरके लिये कैसे जी सकता है?'

वृद्ध धर्माचार्यने उत्तर दिया—'ईश्वरके लिये जीनेका मार्ग प्रभु हमें दिखा गये हैं। यदि तुम पढ़ सकते हो तो उनके उपदेश पढ़ो, उनसे तुम्हारा पथ-प्रदर्शन होगा!'

ये शब्द मार्टिनके हृदयमें घर कर गये, उसी दिन उसने एक धर्मग्रन्थ खरीद लिया और उसका अध्ययन आरम्भ कर दिया।

पहले-पहल तो उसने केवल अवकाशके दिनोंमें उसे पढ़नेका निश्चय किया; किंतु एक बार पाठ करनेके उपरान्त जब उसे अपना मन हलका हुआ जान पड़ा, तब वह प्रतिदिन उसे पढ़ने लगा। कभी-कभी तो वह उसके

अध्ययनमें इतना लीन हो जाता कि उसे पढ़ते-पढ़ते लैम्पका तेल भी खतम हो जाता। ज्यों-ज्यों वह और पढ़ता गया, उसके मस्तिष्कमें ईश्वरका स्वरूप स्पष्ट होता गया। धीरे-धीरे वह अनुभव करने लगा कि ईश्वर उससे क्या चाहता है और उसे ईश्वरके लिये कैसे जीना चाहिये। पहले वह सोनेसे पहले अपने भारी हृदयसे अपने पुत्र कैपिटोनकी यादमें कराहा करता था; किंतु अब उसके मुखसे यह शब्द निकलते—'तुम्हीं सर्वशक्तिमान् हो, ईश्वर! तुम्हीं तेजोमय हो, तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।'

इसके बाद मार्टिनका जीवन ही बदल गया। पहले वह अवकाशके क्षणोंमें चाय पीने किसी होटलमें चला जाया करता था और वहाँ कभी-कभी शराब भी पी लेता था। पर अब उसके जीवनमें ऐसी बातोंके लिये स्थान नहीं रहा था। उसका जीवन शान्ति और प्रसन्नतासे भर गया। वह प्रातः ही अपने काममें जुट जाता और जब वह समाप्त हो जाता, तब लैम्प जलाकर पढ़ने बैठ जाता। जितना ही अधिक वह पढ़ता गया, उतना ही अधिक स्पष्ट उसका अर्थ उसके मस्तिष्कमें पैठता गया और वह अधिकाधिक आत्मानुभूति प्राप्त करने लगा।

एक बार पढ़ते-पढ़ते मार्टिन पुस्तकके छठे अध्यायके निम्न पद्यपर रुक गया—

'जो तुम्हारे एक कपोलपर चपत लगाये, दूसरा भी उसके आगे कर दो; और उस व्यक्तिको जिसने तुम्हारा लबादा लिया है, उसे अपना कोट भी दे दो; और जिसने तुम्हारी कोई वस्तु ली है, उसे वापस मत माँगो; और जैसा व्यवहार तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारे साथ करें, वैसा ही तुम उनके साथ करो।'

उसने वह पद्य भी पढ़ा, जिसमें प्रभुने कहा है—'तुम मुझे 'प्रभु-प्रभु' कहकर क्यों पुकारते हो? मेरे उपदेशोंका तो तुम अनुसरण नहीं करते। जो कोई मेरे पास आता है, मेरे वचन सुनता है और वचनोंपर अमल करता है, वह उस व्यक्तिके समान है, जिसने नींव गहरी खोदी और आधारशिला चट्टानपर रखकर मकान बनाया और जब तूफान और बाढ़ आये और जब प्रचण्ड हवाएँ उसकी दीवारोंसे टकरायीं, तब वह उसे हिला न सकीं—क्योंकि वह चट्टानपर बनाया गया था; और वह जिसने मेरे वचन तो सुने, उनपर अमल नहीं किया, उस मनुष्यकी भाँति है, जिसने अपना घर बिना नींव खोदे बनाया, जिससे बाढ़ उसके साथ टकरायी और वह तुरंत ढह गया। उसकी बर्बादी भी भयानक थी!'

ये शब्द पढ़कर मार्टिनकी आत्मा प्रसन्न हो उठी। उसने आँखोंसे चश्मा उतार पुस्तकपर रख दिया और अपनी कुहनियाँ मेजपर टेककर जो कुछ उसने पढ़ा था, उसका वह मनन करने लगा। अपने जीवनको इन वचनोंकी कसौटीपर कसते हुए उसने अपने-आपसे प्रश्न किया—'मेरा घर चट्टानपर खड़ा है या रेतपर? मैं तो पापी हूँ। हे प्रभु! मुझे शक्ति दे।'

उसे नींद आ रही थी; पर पुस्तक छोड़ना उसे कठिन लगा, इसलिये वह सातवाँ अध्याय पढ़ने लगा। चौवालीसवें पदपर उसने पढ़ा—'वे उस स्त्रीकी ओर मुड़े और उन्होंने साइमनसे कहा—'देखो इस औरतकी तरफ, मैं तुम्हारे घर गया तो तुमने मेरे पैरोंको धोनेके लिये जल भी न दिया; किंतु इसने अपने आँसुओंसे मेरे पैर धोये और उन्हें अपने सिरके बालोंसे पोंछा। तुमने मुझे एक भी आदरवाक्य नहीं कहा, किंतु इस औरतने जबसे मैं आया हूँ, निरन्तर मेरे पैरोंको मरहमसे स्निग्ध किया है।''

मार्टिन फिर मनन करने लगा।

'साइमन मेरे-जैसा ही होगा, मेरी ही तरह वह भी केवल अपने बारेमें ही सोचता होगा—अपने लिये चाय, आराम और ऐश। उसने अपने अतिथिका आदर नहीं किया, अपने अतिथिकी उसने चिन्ता नहीं की और वह अतिथि भी कौन था? स्वयं प्रभु ही तो! क्या मैं ऐसा व्यवहार कर सकूँगा?'

सोचते-सोचते मार्टिन किताबपर ही सिर रखकर सो गया।

'मार्टिन!' उसके कानमें एक धीमा-सा शब्द हुआ।

सोये-सोये ही उसने पूछा—'कौन है?'

'मार्टिन, मार्टिन! कल सड़कपर देखना, मैं आऊँगा।'

मार्टिन नहीं समझ सका कि ये शब्द उसने स्वप्नमें सुने थे या जागरणमें। उसने लैम्प बुझा दिया और वह फिर सो गया।

अगले दिन वह सूर्योदयसे पहले ही जाग गया।

प्रार्थना करनेके बाद उसने आग जलायी तथा बन्द गोभीका शोरवा और दलिया तैयार किया। फिर लैम्प जलाकर और लबादा पहनकर खिड़कीके पास काम करने बैठ गया। वह रातकी घटनाके बारेमें सोचता रहा; कभी उसे वह स्वप्न प्रतीत होता और कभी उसे लगता कि जागरणमें ही उसने वे शब्द सुने थे। काममें उसका मन नहीं लग रहा था, वह बार-बार खिड़कीसे बाहर झाँककर देखता और जब कोई अपरिचित जूते देखता तो झुककर उसके स्वामीका चेहरा देखनेका प्रयास करता। एक चौकीदार नमदेके बूट पहने गुजरा। उसके बाद एक सिक्का, फिर पुराने राज्यका एक बूढ़ा सिपाही खिड़कीके पास आकर रुका। उसके हाथमें फावड़ा था, मार्टिनने उसे उसके बूटोंसे पहचान लिया, जिसके दाँत निकले हुए थे। इस व्यक्तिका नाम स्टैपैनिच था। मार्टिनके पड़ोसी एक व्यापारीने दया करके उसे नौकर रख लिया था। स्टैपैनिच मार्टिनके द्वारके सामनेसे बर्फ हटाने लगा। मार्टिनने उसे कुछ देर देखा और पुन: अपने काममें लग गया।

'मैं भी अजीब सनकी बनता जा रहा हूँ।' मार्टिनने अपनी कल्पनापर हँसते हुए कहा। 'स्टैपैनिच तो बर्फ साफ करनेके लिये रोज ही आता है, मैं समझ रहा हूँ कि प्रभु मेरे पास आये हैं। मैं भी निरा मूर्ख हूँ।' फिर भी एक जूतेकी सिलाई करनेके बाद वह खिड़कीसे बाहर झाँकनेसे अपने आपको रोक नहीं सका। उसने देखा स्टैपैनिच दीवारसे लगकर ठंडसे बचनेका प्रयत्न कर रहा है; वह बूढ़ा और अस्वस्थ, बर्फ हटानेकी शक्ति उसमें नहीं थी।

'यदि मैं उसे बुलाकर थोड़ी चाय पिला दूँ तो कैसा रहे?' मार्टिनके मनमें आया। 'केतलीका पानी बस उबलने ही वाला है।' टेउका उचित स्थानपर रख वह उठा और चाय बनानेमें लग गया। अब उसने स्टैपैनिचको बुलाया—

'अन्दर आ जाओ।' मार्टिनने कहा, 'और अपने आपको गरम कर लो, जरूर तुम्हें ठंड लग रही है।'

'ईश्वर तुम्हारा भला करे।' स्टैपैनिचने कहा। 'सच कहता हूँ कि दर्दके मारे हड्डियाँ जकड़ गयी हैं।' वह अन्दर आया। पहले उसने अपने जूतेपर लगी बर्फको झाड़ा, कहीं फर्श गीला न हो जाय, इसलिये वह अपने गीले पैर पोंछने लगा; किंतु इस उपक्रममें वह लड़खड़ा गया और गिर पड़ा।

'फर्शकी चिन्ता मत करो, मित्र!' मार्टिनने कहा। 'आओ, थोड़ी चाय पियो।'

मार्टिनने एक प्याला उसे दिया और स्वयं तश्तरीमें चाय डाल फूँक मार-मारकर पीने लगा। चाय पीकर स्टैपैनिचने प्याला उलटा करके रख दिया और चीनीके अतिरिक्त टुकड़े अलग रख दिये। उसने मार्टिनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की, किंतु वह स्पष्ट था कि उसे एक और प्यालेकी इच्छा थी।

'लो, और लो, मेरे मित्र!' मार्टिनने प्याला सीधा रखकर भर दिया। ऐसा करते हुए मार्टिन खिड़कीसे झाँक-झाँककर बाहर देखता रहा।

'शायद तुम किसीकी प्रतीक्षा कर रहे हो।' स्टैपैनिचने पूछा।

'प्रतीक्षा! ओह! नहीं, मुझे किसीकी प्रतीक्षा नहीं है; पर रातको मैंने कुछ ऐसी बात सुनी थी, जिसे मैं जल्दी नहीं भुला सकता। मैं नहीं कह सकता कि वह स्वप्न था या सजीव घटना। मैं प्रभुके बारेमें पढ़ रहा था, उन्होंने कैसे-कैसे कष्ट उठाये, कैसे उन्होंने इस धरापर भ्रमण किया, तुमने इस बारेमें जरूर सुना होगा।'

'हाँ, मैंने सुना ही है।' स्टैपैनिचने उत्तर दिया। 'मैं ठहरा गँवार, पढ़ तो सकता नहीं।'

'पढ़ते हुए मैं उस खण्डपर पहुँचा, जहाँ उनके साइमनके वहाँ ठहरनेका वर्णन है। उस यहूदीने उनका समुचित आदर नहीं किया था। मैंने सोचा यदि प्रभु मेरे यहाँ आयें तो क्या मैं वैसा व्यवहार कर सकूँगा? मैंने सोचा, प्रभुके स्वागतमें मैं क्या नहीं करूँगा? सोचते-सोचते मुझे झपकी आ गयी। मैं नहीं कह सकता कि कब मेरे कानोंमें वह आवाज पड़ी, जो मुझे पुकार रही थी। मुझे प्रतीत हुआ, जैसे कोई मेरे कानमें हौले-हौले कुछ कह रहा है! 'मेरी प्रतीक्षा करना, मैं कल आऊँगा।' ऐसे दो बार हो चुका है। सच कहता हूँ यह वहम मेरे दिमागमें बैठ गया है, मुझे अपने गुनाहोंपर शर्मिन्दा होना चाहिये; पर मैं प्रभुकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

स्टैपैनिचने शान्त मुद्रामें सिर हिला दिया और चाय पीकर प्याला उलटा रख दिया, किंतु मार्टिनने उसे सीधा किया और फिर चायसे भर दिया।

'एक प्याला और पी लो, ईश्वर तुम्हारा भला करे।' वह बोला—'मैं सोच रहा था कि प्रभुने इस पृथ्वीपर किसीसे घृणा नहीं की और साधारण ग्रामवासियोंके बीच रहते रहे, भोले-भाले लोगोंके वे पास गये और हम-जैसोंको ही अपना शिष्य बनाया, हम जो मजदूर हैं और सदा पापोंमें लिप्त रहते हैं। प्रभुने कहा था, 'अभिमानीका पतन होगा और विनम्रका उद्धार होगा।' प्रभुने कहा था—'तुम मुझे कहते हो; किंतु मैं उसके चरण धोऊँगा, जो सर्वप्रथम तुममेंसे अपने-आपको सबकी सेवामें अर्पित कर देगा, जो विनम्र है, निःसहाय है तथा दयालु है, धन्य है।'

स्टैपैनिच चाय पीना भूल गया। वह बूढ़ा था, उसका हृदय पिघल गया। उसके नेत्रोंसे आँसू उमड़ पड़े, वह बैठा रहा और सुनता रहा और अश्रु उसके कपोलोंपर बहते रहे।

'लो, थोड़ी और पियो।' मार्टिनने कहा।

'धन्यवाद, मार्टिन।' स्टैपैनिचने कहा और उसने तीन बार अपनेको क्रॉस किया। 'तुमने मेरे शरीर तथा आत्मा दोनोंको भोजन दिया।'

'तुम आते रहा करो, मुझे अतिथियोंकी सेवा करनेमें आनन्द मिलता है।' मार्टिनने कहा।

स्टैपैनिचके जानेके बाद मार्टिनने शेष चाय अपने प्यालेमें उड़ेल ली और पीकर वह पुनः काममें जुट गया। जूता गाँठते वह बाहर सड़ककी ओर देखता रहता, उसकी आँखोंमें प्रतीक्षा भरी हुई थी, उसका मस्तिष्क उसी आवाजसे गूँज रहा था।

एक स्त्री, जो फटे हुए मोजे और गाँवके बने जूते पहने थी, उधर आयी और दीवारके साथ लगकर खड़ी हो गयी। मार्टिनने उसे देखा, वह उस स्थानमें अपरिचित-सी लग रही थी। उसकी बाँहोंमें एक बच्चा था। वह हवाकी ओर पीठ करके उसे ढाँपनेका निष्फल प्रयास कर रही थी। वह नाममात्रको ही वस्त्र पहने थी और वे वस्त्र भी ग्रीष्मऋतुके थे। मार्टिनने बच्चेके रोनेका शब्द सुना। उसकी माँ उसे चुमकार रही थी। परंतु वह उससे चुप नहीं हो रहा था। मार्टिनने द्वारसे बाहर जाकर औरतको बुलाया, 'सुनो, मैंने कहा, सुनो तो।'

वह स्त्री मार्टिनकी ओर मुड़ी।

'इस सर्दीमें तुम बच्चेको लिये वहाँ क्यों खड़ी हो? अन्दर आ जाओ, यहाँ कमरा गरम है, यहाँ तुम सर्दीसे उसका बचाव कर सकोगी।'

लबादा पहने और चश्मा चढ़ाये हुए बूढ़े मार्टिनको इस प्रकार पुकारते देख उस स्त्रीको विस्मय हुआ, किंतु वह अन्दर चली आयी।

मार्टिनने बिस्तरकी ओर संकेत करते हुए उससे कहा—'बेटी! अँगीठीके पास बैठकर अपने-आपको सेंक लो, बच्चेको दूध पिला दो।'

'मैंने सुबहसे कुछ नहीं खाया, मेरी छातीमें दूध कहाँ?' स्त्रीने कहा। फिर भी उसने बालकका मुख अपने स्तनसे लगा दिया।

मार्टिनने सहानुभूतिसे सिर हिलाया और एक कटोरी अँगीठीपर रखकर बन्दगोभीका सूप गरम करने लगा। दलिया अभी तैयार नहीं हुआ था, इसलिये सूप और रोटी ही उसने मेजपर परोस दी।

'लो, तुम खाना खा लो; मैं बच्चेको हिलाता हूँ।' मार्टिनने कहा।

'मेरे भी चार बच्चे थे, मैं बच्चोंकी परवरिश करना जानता हूँ।'

स्त्रीने प्रभुसे प्रार्थना की और वह मेजपर बैठ गयी। मार्टिन बच्चेको बिस्तरपर लिटाकर उसके पास बैठ गया और उससे बातें करने लगा; किंतु बच्चा रोता ही रहा। मार्टिनने उसे बहलानेका बहुत प्रयास किया। अपनी अँगुली वह बच्चेके होठोंतक ले जाता और फिर तेजीसे पीछे हटा लेता, मोमसे काली हुई अँगुली वह उसके मुँहमें नहीं देता था। बच्चा पहले तो एकटक अँगुलीको देखता रहा, फिर किलकारियाँ मारकर हँस पड़ा; मार्टिनको खुशी हुई।

भोजन करते हुए वह स्त्री बता रही थी कि वह कौन है और कहाँसे आयी है। उसने कहा—'मैं एक सिपाहीकी पत्नी हूँ, आठ महीने हुए उसे कहीं दूर भेज दिया गया। मुझे उसका कोई पता नहीं। इस बालकके जन्मनेसे पहले मैं किसी घरमें रसोई बनानेका काम करती थी, किंतु बालकके साथ वे मुझे रखनेको तैयार नहीं हुए। पिछले तीन माससे मैं कामकी तलाश कर रही हूँ, पर कहीं काम नहीं मिला। जो कुछ मेरे पास था, वह सब बेचकर अपना

और इस बच्चेका पेट पाल सकी हूँ। आज एक व्यापारीकी पत्नीने मुझे अपने यहाँ रखनेका वचन दिया है, परंतु मुझे अगले सप्ताहसे पहले आनेको मना किया है। यहाँसे उसका घर बहुत दूर है। मैं थककर चूर हो गयी हूँ, मेरा बच्चा भूखसे व्याकुल है; प्रभुकी कृपा है। मेरा मकान-मालिक मुझपर दया करके मुझसे बिना कुछ लिये कोठरीमें रहने दे रहा है,नहीं तो भगवान् जानें कहाँ भटकती फिरती!'

मार्टिनको उसके प्रति सहानुभूति हुई, उसने कहा—'तुम्हारे पास गरम वस्त्र नहीं है?'

'मेरे पास गरम वस्त्र कैसे हो सकते हैं?' स्त्रीने उत्तर दिया।'कल ही तो मैंने अपनी अन्तिम वस्तु—अपनी शाल छः पैसेमें गिरवी रख दी थी?' उसने बच्चेको गोदमें डाल लिया।

मार्टिनने दीवारपर टँगा एक लबादा उतारकर कहा—'यह है तो फटा-पुराना ही, पर बच्चेको ढाँपनेके काम तो आ ही सकता है।'

स्त्रीने लबादेकी ओर देखा, फिर मार्टिनकी ओर, उसकी आँखोंसे आँसू आ गये। उसने कहा—'ईश्वर तुम्हारा भला करे, अवश्य ही प्रभुकी प्रेरणासे मैं तुम्हारी खिड़कीपर आ सकी, नहीं तो यह बच्चा ठंडके मारे जम गया था। जरूर प्रभुने तुम्हें खिड़कीसे बाहर झाँकनेके लिये प्रेरणा दी होगी। मुझ अभागिनपर तुमने बहुत दया की है।'

मार्टिनने मुसकराकर कहा—'यह ठीक है! प्रभु ही मुझसे वह सब कुछ करवा रहे हैं। मेरा बाहर झाँकना कोई संयोग नहीं है।' मार्टिनने अपने स्वप्नके बारेमें उस स्त्रीको बताया।

'सब कुछ सम्भव है।' स्त्रीने कहा और लबादेको कंधोंपर डालकर अपनेको तथा बच्चेको उसमें लपेट लिया। फिर झुककर उसने मार्टिनको धन्यवाद दिया।

'ईश्वर तुम्हें प्रसन्न रखें।' मार्टिनने कहा, 'लो, यह और ले लो, इससे अपनी शाल छुड़ा लेना।' उसने छः पैसे उस स्त्रीके हाथपर रख दिये और वह स्त्री चली गयी। उसके जानेके बाद मार्टिनने खाना खाया, मेजको साफ किया और फिर काम करने बैठ गया। बीच-बीचमें वह उचक-उचककर बाहर सड़कपर आने-जानेवालोंको देख लेता। परिचित और अपरिचित सभी गुजर रहे थे। पर मार्टिनको किसीमें विशेष रुचि नहीं हुई।

सेववाली एक बूढ़ी औरत उसकी खिड़कीके सामने आकर रुकी। उसके पास एक बड़ी टोकरी थी। पर उसमें अधिक सेव नहीं थे। उसकी पीठपर लकड़ियोंका गट्ठा था, जिसके भारसे उसकी कमर दुख रही थी। उसने गट्ठेको सड़कपर पटक दिया। वह शायद कन्धा बदलना चाहती थी। सेवकी टोकरी उसने खम्भेके पास रख दी।

इसी बीचमें एक लड़का दौड़ता हुआ आया और चुपकेसे टोकरीमेंसे सेव उठाकर खिसकने लगा, पर बुढ़ियाने आड़े हाथोंसे उसे आस्तीनसे पकड़ लिया। लड़का छूटनेके लिये हाथ-पाँव मारने लगा, पर बुढ़ियाने उसे दोनों हाथोंसे थाम रखा था। वह उसके बाल नोचने लगी, लड़का चिल्लाया और बुढ़ियाने उसे डाँटा।

मार्टिनने यह देखा तो काम छोड़कर भागा। रास्तेमें उसे ठोकर लगी, चश्मा उसकी आँखोंसे गिर पड़ा। पर वह उसकी परवा न करते हुए सड़कपर आ गया। बुढ़िया लड़केके बाल नोच रही थी और उसे पुलिसके हवाले करनेकी धमकी दे रही थी। लड़का उसका प्रतिरोध करते हुए कह रहा था—'छोड़ दो मुझे, छोड़ दो, मैंने कहाँ सेव उठाया है? किसलिये मुझे पीट रही हो?'

मार्टिनने छुड़ाया, 'जाने दो, दादी, उसे जाने दो। फिर वह ऐसा नहीं करेगा, ईश्वरके लिये उसे जाने दो।'

'जाने दूँ? मैं इसे ऐसा मजा चखाऊँगी जो सालभर याद रखे! बदमाशको अभी पुलिसमें देती हूँ चलकर।'

मार्टिनने नम्रतापूर्वक कहा—'छोड़ो भी दादी, जाने दो न! ईश्वरके लिये उसे छोड़ दो।'

बुढ़ियाने लड़केको छोड़ा तो वह भागनेको हुआ; पर मार्टिनने उसे पकड़ लिया। 'दादीसे क्षमा माँगो' उसने कहा। 'मैंने तुम्हें सेव उठाते हुए देखा था।'

लड़केने रोकर क्षमा माँग ली।

'शाबाश! अब तुम यह सेव ले सकते हो।' मार्टिनने कहा और उसे एक सेव दे दिया। फिर बुढ़ियासे कहा—'अभी पैसे देता हूँ।'

'इस तरह बच्चे सिरपर चढ़ते हैं…चालाक, शैतान…' बुढ़ियाने कहा। 'तुम्हें तो कोड़े लगने चाहिये थे! कुछ दिन तो मार याद रहती।'

'आह, दादी!' मार्टिनने कहा। 'यह हमारा तरीका है,

ईश्वरका नहीं; यदि इसे एक सेव चुरानेके बदले कोड़े लगने चाहिये तो बताओ, हमारे घोर पापोंके लिये हमें दण्ड नहीं मिलना चाहिये?'

बुढ़ियासे उत्तर नहीं बन पड़ा।

मार्टिनने उसे वह दृष्टान्त सुनाया, जिसमें एक मालिकने अपने नौकरका सारा ऋण माफ कर दिया था, पर उस नौकरने अपने ऋणीका गला घोंट दिया। बुढ़ियाने मार्टिनकी बात ध्यानसे सुनी और उस लड़केने भी।

'यह सब ठीक है।' बुढ़ियाने सिर हिलाते हुए कहा। 'पर यह बहुत बिगड़ गया है।'

'ईश्वर हमें क्षमा कर देता है। मार्टिनने कहा। तुम भी हर-एकको क्षमा कर दो, इस अबोध बालकको तो अवश्य ही! नहीं तो, हम भी क्षमा पानेयोग्य पात्र नहीं…।'

'यह सब ठीक है, पर यह बहुत बिगड़ चुका है।'

'तो हमें इसे सन्मार्गपर चलना सिखाना चाहिये।' मार्टिनने कहा।

'ठीक! यही तो मैं भी कहती हूँ।' बुढ़िया बोली। 'मेरे भी सात बच्चे थे; पर अब तो बस, एक लड़की ही रह गयी है।' बुढ़ियाने बताया कि वह कहाँ और कैसे अपनी बेटीके साथ रहती है और उसके कितने धेवते हैं। 'अब तुम्हीं देखो, मुझमें जरा भी शक्ति नहीं रह गयी, पर इन बच्चोंके लिये मैं कितना परिश्रम करती हूँ। वे बच्चे बड़े भोले हैं। मेरे साथ तो कोई नहीं खेलता, पर नन्हा ऐसी, वह तो मेरी गोदमेंसे उतरता ही नहीं, कहता रहेगा—नानी, प्यारी नानी, मेरी अच्छी नानी।' बुढ़ियाकी आवाज जरा नरम होती गयी। 'हाँ, यह भी आखिर बच्चा ही तो है, ईश्वर इसे सुबुद्धि दे।' उसने लड़केकी ओर देखा, फिर वह पीठपर लकड़ीका गट्ठा डालने लगी, पर लड़केने आगे बढ़कर कहा—'लाओ, दादी, मुझे दे दो, मैं इसे ले चलूँगा। मैं भी इसी मार्गसे जा रहा हूँ।'

बुढ़ियाने आँखोंमें प्यार भरकर लड़केकी ओर देखा और गट्ठा उसकी पीठपर डाल दिया। दोनों साथ-साथ चल पड़े। वह मार्टिनसे सेवके पैसे लेना भी भूल गयी। मार्टिन कुछ देर खड़ा उन दोनोंको देखता रहा।

जब वे आँखोंसे ओझल हो गये, तब मार्टिन अन्दर आ गया और औजार उठाकर काम करने लगा। पर काममें मन नहीं लगा। उसी समय उसने लैम्प जलानेवालेको लैम्प जलाते देखा। उसने भी लैम्प जला दिया। अपने औजारोंको समेटा और दूसरा सामान भी ठिकाने लगा दिया।

अब वह पढ़ने बैठा। वह उस अध्यायको पढ़ना चाहता था, जो उसने तीन दिन पहले शुरू किया था। पर पुस्तक दूसरे पृष्ठपर खुली। मार्टिनको उस रातका स्वप्न याद आ गया।

तभी उसके कानोंमें ऐसी आवाज हुई, मानो कोई उसके पीछे चल रहा है। मार्टिनने मुड़कर देखा। उसे ऐसा आभास हुआ मानो चारों कोनोंमें लोग खड़े हैं; परंतु वह यह नहीं जान सका कि वे कौन हैं। वे उसे दिखायी नहीं दिये। उसके कानोंमें फिर धीमी-धीमी एक आवाज आयी। 'मार्टिन, मार्टिन, मुझे जानते हो?'

'कौन, कौन बोल रहा है?' मार्टिन बड़बड़ाया।

'मार्टिन, आवाज आयी, और एक अँधेरे कोनेसे स्टैपैनिच प्रकट हुआ। वह मुसकराया और एक बादलकी तरह अदृश्य हो गया।'

'और यह मैं हूँ मार्टिन' पुनः एक आवाज सुनायी दी और दूसरे कोनेसे गोदमें बालक उठाये एक स्त्री निकली। वह स्त्री मुसकरायी। बच्चेने किलकारी भरी और वे दोनों भी अदृश्य हो गये।

'हमें पहचानते हो, मार्टिन?' फिर एक आवाज आयी और अब बुढ़िया तथा हाथमें सेव लिये वह लड़का दोनों सामने आये। दोनों मुसकराये और वे भी अदृश्य हो गये।

मार्टिन पुलकित हो उठा। प्रभुको नमस्कार करते उसका मस्तक झुक गया। उसने चश्मा लगाकर उसी पृष्ठपर पढ़ना शुरू किया। जहाँ पुस्तक खुली थी। पहली पंक्तिमें लिखा था। 'मैं भूखा मर रहा था, तूने मुझे भोजन दिया। मैं प्यासा था, तूने मुझे पानी दिया, मैं अजनबी था, तूने मुझे आश्रय दिया।'

और पृष्ठकी अन्तिम पंक्तिमें लिखा था। 'और यह स्नेह जो तूने मेरे इन बन्धुओंके प्रति दिखाया, वह मेरे प्रति ही है।'

मार्टिन समझ गया कि प्रभु स्वयं ही उसके अतिथि बने थे। उसे सन्तोष हुआ कि उसने प्रभुका समुचित सम्मान किया। [अनु० श्रीजयन्तीप्रसादजी]

निष्काम कर्मद्वारा परमात्माकी प्राप्ति

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

लौकिक उन्नति और पारलौकिक उन्नतिके अर्थात् भगवत्प्राप्तिके साधन अलग-अलग नहीं हैं। जो वास्तविक लौकिक उन्नतिका साधन है, वही पारलौकिक उन्नतिका भी साधन है। इन दोनोंका भेद मानकर लोग अपने कर्तव्यमें भूल कर बैठते हैं। वास्तवमें लौकिक उन्नतिवाला वही है कि जिसकी आवश्यकता दूसरोंको हो जाय। संसारमें जो बड़े आदमी समझे जाते हैं, वे भी जिसके पीछे-पीछे फिरते रहें और उनकी कोई वस्तु वह अपने उपयोगमें ले ले तो लोग अपना अहोभाग्य समझें।

जो मनुष्य दूसरोंसे कुछ लेना चाहता है, अपने सुखका आधार दूसरोंको मानता है, दूसरोंसे आशा लगाये रहता है, वह क्या उन्नतिशील कहा जा सकता है? वह तो चाहे कितना भी बड़ा वैभवशाली क्यों न हो, दरिद्र ही है। उन्नतिशील तो वही है, जो प्राप्त विवेकका आदर और बलका सदुपयोग करता है। दूसरोंके हितमें अपने तन, मन, धनको लगा देता है। लोभी मनुष्य कभी भी उन्नतिशील नहीं हो सकता।

विचार करना चाहिये कि कर्म करनेका विधान किसलिये है? विचार करनेपर मालूम होगा कि मनुष्यमें जो क्रियाशक्तिका वेग है, उसकी जो करनेमें आसक्ति है, उसे मिटानेके लिये ही कर्मोंका विधान है। अतः अपने स्वभाव और परिस्थितिके अनुसार जो कर्म कर्तव्यरूपसे प्राप्त हुआ है, उसे खूब सावधानीके साथ उत्साहपूर्वक सांगोपांग पूरा कर दे; किंतु उस कर्मके फलरूपमें प्राप्त होनेवाले पदार्थोंसे अपना मूल्य अधिक समझे। उनके बदलेमें अपने-आपको बेचे नहीं; क्योंकि जो कर्मसे प्राप्त होनेवाले फलसे अपना मूल्य कम कर लेता है, उनके बदलेमें अपनेको बेच देता है, वह न तो वास्तविक लौकिक उन्नति कर सकता है और न पारलौकिक उन्नति ही कर सकता है। वह उन वस्तुओंकी दासताके कारण सदैव अभावका ही अनुभव करता रहता है।

जो यह समझता है कि यदि मुझे कर्मसे कुछ लेना ही नहीं है तो मैं कर्म क्यों करूँ, वह भी कर्मको ठीक-ठीक नहीं कर सकता। आलसी बन जाता है। जो फलके लालचसे कर्म करता है, उसका लक्ष्य भी कर्मकी सुन्दरतापर नहीं रहता। अतः वह भी करनेयोग्य कर्मको ठीक-ठीक पूरा नहीं कर सकता। लोभके वशमें होकर वह उस कर्ममें अनेक प्रकारकी त्रुटियोंका समावेश कर लेता है। कर्मको सांगोपांग तो वही कर सकता है, जिसके मनमें फलका लालच नहीं है, किंतु कर्तव्य-कर्मको सांगोपांग पूरा करना ही जिसका उद्देश्य है।

कर्मका जो दृश्य फल है, वह तो कर्ता चाहेगा तो भी होगा और न चाहेगा तो भी होगा। चाहने और न चाहनेसे उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। जैसे भोजन करनेसे भूखकी निवृत्ति तो दोनोंकी ही होगी, परंतु जो स्वादके लालचसे भोजन करेगा, वह कर्म, विधानके विपरीत वस्तुओंको खाकर उलटा अपना अहित कर लेगा। इसी प्रकार व्यापारमें भी समझ लेना चाहिये। व्यापारमें लाभ या हानि तो जो होनी है, वही होगी; परंतु जो मनुष्य लाभके लालचसे और हानिके भयसे युक्त होकर व्यापार करेगा, वह उस व्यापारमें उन नियमोंका भी यथायोग्य पालन नहीं कर सकेगा, जिनका पालन करना लौकिक उन्नतिकी दृष्टिसे आवश्यक है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि निष्कामकर्ममें कोई कठिनाई नहीं है, प्रत्युत सकामकी अपेक्षा निष्काम ही सुगम है और वही लौकिक उन्नतिका भी उपाय है।

जो सम्पत्तिशाली मनुष्य लोभके वश होकर उस सम्पत्तिका सदुपयोग नहीं करता, उससे निर्धनोंके अभावकी पूर्ति नहीं करता, वह लोकमें भी उन्नतिशील नहीं माना जाता तथा जो निर्धन मनुष्य धनकी कामनाका त्याग नहीं करता, वह भी सुखी नहीं हो सकता। अतः लौकिक उन्नतिके लिये भी सब प्रकारसे कामनाका त्याग आवश्यक है।

जो साधक अपने स्वभाव और परिस्थितिके अनुरूप कर्तव्यरूपसे प्राप्त कर्मको बिना किसी प्रकारके फलकी

चाहके ठीक-ठीक पूरा कर देता है, जिस प्रकार उसे करना चाहिये, ठीक वैसे ही करता है, आलस्य या प्रमादवश उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं करता, शौच करना, स्नान करना, जीविकाके कर्म करना, सेवारूप कर्म करना, भोजन करना, शयन करना आदि जितने भी आवश्यक कर्म हैं, सबको जो यथावश्यक समयपर भलीभाँति कुशलता और उत्साहपूर्वक पूरा कर देता है, उस कर्तव्यपालनसे उसकी क्रियाशक्तिका वेग और कर्म करनेकी आसक्ति मिटती जाती है। चित्त शुद्ध हो जाता है। भोग-वासना नष्ट हो जाती है। किसी प्रकारकी चाह न रहनेसे चित्त निर्विकल्प हो जाता है। फिर योगसे सामर्थ्य, विवेकसे बोध और वैराग्यसे भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होकर उसका परलोक भी सब प्रकारसे सुधर जाता है।

'सच्चा सौदा नामका····'

(प्रेमप्रकाशी सन्त श्रीमोनूरामजी)

नीच ऊँच निर्धन धनी, सब में लख कर्तार।

कह टेऊँ शुद्ध भाव से, सबका कर सत्कार॥

सृष्टिके पालनहार परमात्मा सबको चला रहे हैं। क्या तेरा, क्या मेरा, कुछ नहीं। सर्वत्र परमात्मा ही परमात्मा···· अपनत्व भाव····।

ऐसे ही परमात्मस्वरूप उदारताकी साक्षात् मूर्ति युगपुरुष सद्गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज, जिनकी बाल्यावस्थासे ही वृत्ति परमात्मासे जुड़ी हुई थी, किंतु लौकिक मान-मर्यादाओंको ध्यानमें रखकर परिवारमें बड़ोंकी आज्ञामें रहना उनका परम ध्येय था। पिता श्रीचेलारामके देवलोकगमनके पश्चात् उनके बड़े भ्राता श्रीटहलरामजी पूरी जिम्मेदारीसे कार्यभार सँभालते थे। कार्योंमें हाथ बँटानेके उद्देश्यसे स्वामीजीको भी दुकानका कार्यभार सँभालनेके लिये कहा गया।

जो संसारमें जीवोंका उद्धार करनेके लिये आया हो, उसे भला सांसारिक व्यवहारसे क्या काम! फिर भी माताश्री तथा बड़े भ्राताके आज्ञानुसार प्रतिदिन लोक-व्यवहारकी तरह दुकान खोलते थे। जिसका मन परमात्मासे जुड़ा हो, वह सदैव परमात्माके नामका ही सौदा करता है, उसे व्यावहारिक सौदेसे क्या काम! अपनी दुकानपर लिखवा दिया—***'सच्चा सौदा नाम का, झूठा सब व्यवहार। नाम जपे चलता रहे, जगका कारोबार॥'***

परमात्माको ही सब कुछ मान लिया। दिन भर राम-नामरूपी सौदागरोंकी कतारें लगी रहतीं; सत्संग, भजन-कीर्तनकी बहार, सन्त-महात्माओंकी सत्संग सभा, आध्यात्मिक ज्ञानचर्चा, सभी भक्त ज्ञान-सरोवरमें लगाते डुबकियाँ···· बस! सौदा नामका····

जो कोई भी दुकानपर आता, अपनी आवश्यकतानुसार वस्तु ले जाता, कोई हिसाब-किताब नहीं; जिसे चाहिये पैसा रख जाय तो ठीक, न रखे तो भी ठीक। सब कुछ भगवान्-भरोसे। सद्गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज तो अपनी भक्तिमें मस्त, परमात्माके रंगमें रँगे···· गरीब-अनाथोंको तो मुफ्तमें ही सामान दे देते····।

ऐसा अलौकिक व्यवहार! जब उनके बड़े भाईको पता चला कि स्वामीजी दुकानका सामान गरीब-अनाथोंको लुटा रहे हैं। सारे दिन सन्तोंको बैठाकर भजन-कीर्तन कर रहे हैं तो बहुत नाराज हुए। कुछ भला-बुरा भी कहा, पर स्वामीजीकी अपनी मौज, भक्तिका अनोखा आलम····

स्वामीजी मौन रहे, कुछ भी न बोले। कुछ समय बाद भाई टहलरामने जब दुकानका कार्यभार सँभालकर हिसाब-किताब लगाकर देखा तो आश्चर्यमें पड़ गये। जहाँ नुकसान होना चाहिये, वहाँ लाभ-ही-लाभ···· अचम्भित····।

ये होती है भजन-सत्संगमें शक्ति! जो सर्वत्र भगवान्को समर्पित हो जाते हैं। उनका सारा कार्यभार परमात्मा स्वयं पूरा करते हैं। सदैव प्रभु भक्तका मान रखते हैं।

तीर्थ-दर्शन—

श्रीपुरी धाम

(आचार्य श्रीजगन्नाथप्रसादजी गुप्त)

आधुनिक पुरीक्षेत्र प्राचीनकालमें पुरुषोत्तमक्षेत्र, जगन्नाथक्षेत्र और श्रीक्षेत्र नामसे प्रसिद्ध था। आधुनिक कालकी पुरीके पाँच कोसके गिर्दमें पुरुषोत्तमक्षेत्र था। १५० वर्षपूर्व जगन्नाथ-मन्दिर और गुंडिचावाडीके बीच बाँकीमोहाड़ नदी प्रवाहित थी। पहले नदीके एक किनारे एक रथ और दूसरे किनारे दूसरा रथ, रथयात्रामें निकलता था। यही बाँकीमोहाड़ नदी चक्रनारायण-मन्दिरके पास समुद्रमें संगम करती है। ब्रह्मपुराण (४४।७९)-में इसका विस्तार दस योजन लम्बा, पाँच योजन चौड़ा बताया गया है—

'दशयोजनविस्तीर्णं पञ्चयोजनमायतम्।
नानाश्चर्यसमायुक्तं क्षेत्रं परमदुर्लभम्॥'

इसी क्षेत्रमें नीलगिरिपर्वत विराजमान था, जिसपर जगन्नाथ-मन्दिर निर्मित है। इसी पर्वतके पास नाना प्रकारके वृक्षोंका जंगल था। इसी पर्वतपर एक बड़ा कल्पवृक्ष था। इस वृक्षके पश्चिममें रोहिणीकुण्ड था, जिसमें स्फटिककी सीढ़ी थी। इस कुण्डके पूर्वमें नीलमणि भगवान् वासुदेवकी मूर्ति थी। इस पर्वतके पश्चिममें सबर लोगोंका आश्रम था। यह क्षेत्र चार धामका अन्यतम प्रधान क्षेत्र स्वयं भगवान् विष्णुका वपुस्वरूप माना गया है। दारुरूपी जगन्नाथका यह क्षेत्र परम पवित्र है। यह पुण्यतम स्थान है। इस क्षेत्रमें जो वास करता है, उसका जीवन सफल है। यहाँकी दारुमूर्ति शास्त्रसम्मत है। स्वयं भगवान् निज इच्छासे स्वयं गठन करके आविर्भूत हुए हैं। यह क्षेत्र अन्य क्षेत्रोंसे अति प्रिय है।

यह सर्वसम्मत है कि जगन्नाथजीके आदि-प्रतिष्ठाता श्रीइन्द्रद्युम्न राजा हैं। ये अवन्ति नगरमें राज्य करते थे। ये परम भक्त थे। इन्द्रद्युम्नने ही दारुमूर्ति बनवायी थी। वर्तमान मन्दिर उन्हींके द्वारा निर्मित हुआ है। ये राजा कलियुगके आदिमें हुए हैं। यह बात इतिहासद्वारा भी प्रतिपादित है। मादलापाँजीसे सिद्ध होता है कि अन्य राजाओंने मूर्तियोंकी केवल पुन: प्रतिष्ठा ही करवायी है।

उत्कलमें बौद्ध लोगोंका बहुत दूरतक राज्य रहा, किंतु बौद्धोंका प्रभाव इस मन्दिरपर नहीं पड़ सका। मध्यप्रदेशमें राजिवलोचन और शिवरीनारायण, शिवपुरी स्थानोंमें सबरलोगोंका राज्य इन्द्रद्युम्नके समयमें था। अतएव इनका भी धार्मिक महत्त्व है।

पुरुषोत्तमक्षेत्रमें भगवान् श्रीजगन्नाथजीके आविर्भावके पहले नीलमाधव ही प्रधान देवता माने जाते थे। सृष्टिके आदिकालसे नारायणकी आराधना इस क्षेत्रमें होती आयी

है। जगन्नाथजीके आविर्भावका वर्णन कई संस्कृत ग्रन्थोंमें मिलता है, जिनमें ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण मुख्य हैं। उड़िया ग्रन्थोंमें भी यही वर्णन मिलता है, जिनमें सारलादासका महाभारत उल्लेखनीय है। उड़िया कवियोंने जनश्रुतिको ही लिपिबद्ध किया है। जगन्नाथजीके आविर्भावका वर्णन इस प्रकार है—राजा इन्द्रद्युम्न अवन्ति नगरमें रहते थे। वे वैष्णव तथा शास्त्रकोविद थे। उन्होंने स्वप्नमें नीलमाधवके दर्शन किये और उन्हें यह आभास मिला कि उनके लिये पुरीमें एक विशाल मन्दिर बनवा दो तथा उन्होंने यह भी स्वप्नमें सुना कि शिबरीनारायणमें जो नीलमाधवकी मूर्ति है, उसे वहाँसे ले जाकर पुरीके नये मन्दिरमें पधराओ; क्योंकि उस मन्दिरमें यह एक अनुचित बात है कि नीलमाधवके दर्शन सिवा सबर राजाके और कोई नहीं कर सकता। राजाने एक सभामें अपने विचार प्रकट किये। मन्त्रणाके पश्चात् उन्होंने अपने मन्त्री विद्यापतिको यह कार्य सौंपा।

विद्यापतिने शिबरीनारायणमें जाकर सब रहस्य देखा। जिस मन्दिरमें नीलमाधवकी स्फटिकमणिकी मूर्ति थी, उसके दरवाजेपर एक विद्युन्मय यन्त्र था और दो पत्थरके सिंह थे, जो उस व्यक्तिपर प्रहार करते थे, जो एक मुँदरी धारण किये नहीं जाता था। वह मुँदरी सबर राजा अपने पास रखते थे और किसीको भी नहीं देते थे। इस प्रकार नीलमाधवका दर्शन कोई नहीं कर सकता था। वरं अज्ञात व्यक्तियोंकी उन शेरोंके द्वारा हत्या हो जाती थी। विद्यापति अपनी कुशाग्र बुद्धिके द्वारा नीलमाधवका दर्शन करनेमें सफल हुए और पश्चात् वे नीलमाधवकी मूर्तिको वहाँसे हटाकर उज्जैनमें ले आये। फिर राजा इन्द्रद्युम्नने नीलमाधवकी मूर्ति पधरानेके लिये पुरीमें एक विशाल मन्दिर बनवाया, जो ९० हाथ ऊँचा था। इस मन्दिरमें नीलमाधवकी मूर्ति प्रतिष्ठित की गयी।

जब नीलमाधवके दर्शनसे पापियोंको मुक्ति मिलने लगी, तब यमराजको चिन्ता हुई कि उनका लोक शून्य हो जायगा। तब उन्होंने भगवान् विष्णुसे प्रार्थना की कि आप मेरी रक्षा कीजिये। भगवान् विष्णुने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और वचन दिया कि अब नीलमाधव लुप्त हो जायँगे। तत्पश्चात् समुद्रमें ऐसा ज्वारभाटा आया कि नीलमाधवका मन्दिर बालूसे ढक गया और नीलमाधवकी मूर्ति अदृश्य हो गयी। लोगोंको मन्दिरका पता भी नहीं चला।

इन्द्रद्युम्नको जब नीलमाधव और मन्दिरके गुप्त होनेका समाचार मिला, तब उन्हें और उनकी रानी गुंडिचा देवीको बहुत शोक हुआ। उन्होंने नीलमाधवके पुनः दर्शन पानेके लिये एक हजार अश्वमेध यज्ञ किये और रानीने कठोर व्रत किये। जब राजाके १००० अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न हो चुके, तब आकाशवाणी हुई कि 'राजा! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। यद्यपि तुमको नीलमाधवका दर्शन अब हो नहीं सकता, किंतु स्वयं भगवान् दारुरूपसे अपनी प्रतिमाका गठन करेंगे और चतुर्धा मूर्तियोंका दर्शन तुमको होगा। वही भगवान् साक्षात्‌रूपसे माने जायँ। समुद्रमें जो वृक्ष दिख रहा है, वह श्रीकृष्णभगवान्‌के पिण्डसे उत्पन्न है। उसे लाकर पधरा दो। फिर भगवान् एक वृद्धके रूपमें आयेंगे और एक बन्द कमरेमें मूर्तियोंका निर्माण करेंगे। बीस दिनोंतक कमरा बन्द रखना। कोई भी गठनकी ध्वनि सुन न सके। इन मूर्तियोंके दर्शनसे सबका कल्याण होगा।'

देववाणी सुननेके पश्चात् राजा इन्द्रद्युम्नने उस लकड़ीको समुद्रसे मँगवाया। एक वृद्ध विश्वकर्मा आये। उन्होंने एक बन्द कमरेमें प्रवेशकर मूर्तियोंका गठन आरम्भ किया। और कहा बीस दिनोंतक कमरा बन्द रखना। पन्द्रह दिनोंतक किसीको मूर्ति-गठनकी कोई भी आवाज सुनायी नहीं दी। भीतर उन वृद्ध महात्माके रहनेपर भी कोई भी ध्वनि कर्णगोचर नहीं हुई, तब पहरेदारोंको सन्देह हुआ कि वृद्ध जीवित नहीं हैं, नहीं तो बिना आहटके पन्द्रह दिनतक वे कैसे जीवित रहे होंगे। उन्होंने जाकर रानी गुंडिचादेवीको यह समाचार सुनाया, तब उन्होंने विचार किया कि उनके महलमें कोई हत्या न हो जाय। अत: उन्होंने उस स्थलपर जाकर निरीक्षण किया तो उन्हें भी कोई आहट नहीं मिली। यद्यपि कमरा खोलनेकी बीस दिनोंकी अवधि पूरी नहीं हुई थी, तब भी हत्याके भयसे उन्होंने कमरा खोलनेकी आज्ञा दे दी।

कमरा खोला गया। वहाँ चार अपूर्ण मूर्तियोंके दर्शन हुए। वृद्ध विश्वकर्मा नहीं दिखायी दिये। ये चार अधूरी मूर्तियाँ श्रीजगन्नाथजी, श्रीबलभद्रजी, श्रीसहोद्रा (सुभद्रा) देवी और सुदर्शन चक्रकी थीं। रानी और राजाको बड़ा विस्मय हुआ, परंतु उन्होंने स्वयं भगवान्‌का प्रादुर्भाव

देखनेके कारण अपनेको कृतार्थ ही माना। इस प्रकार ये चारों मूर्तियाँ स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी साक्षात् आभा हैं।

नीलमाधवका मन्दिर, जिसको समुद्रने बालूसे ढक दिया था, बहुत दिनोंतक अदृश्य रहा। एक दिन उत्कल (ओड़ीसा)-के राजा गालमाधव शिकारके लिये पुरीक्षेत्रके जंगलमें भ्रमण कर रहे थे। अकस्मात् उनके घोड़ेकी टापमें चोट आ गयी। राजाने उतरकर देखा तो मालूम हुआ कि पृथ्वीमें एक कलश गड़ा हुआ है। उसीसे घोड़ेकी टापमें चोट आयी थी। राजाने उसको खुदवानेकी आज्ञा दी। तब राजा इन्द्रद्युम्नद्वारा विनिर्मित मन्दिर पूरा निकल आया।

राजा इन्द्रद्युम्नने चारों दारुमूर्तियोंको गुंडिचा रानीके महलमें लाकर इसी मन्दिरमें पधराया। तबसे यह मन्दिर एक प्रसिद्ध धाम हो गया। भगवान्‌का दारुरूप शरीर उनकी लीलामात्र है। यह क्षेत्र स्वयं विष्णुभगवान्‌का आलय है और ये मूर्तियाँ साक्षात् विष्णुद्वारा ही संस्थापित हैं। इन गोपनीय दारुमूर्तियोंके सम्बन्धमें तर्क करना निषिद्ध है। जैसी जिसकी भावना रहती है, उसको वैसा ही फल मिलता है। चतुर्धामूर्तिका तत्त्व यह है कि जगन्नाथ ही श्रीकृष्ण हैं। पुरीको द्वितीय द्वारका कहते हैं। नीलमाधव ही विष्णु हैं और उनके अन्तर्धानके बाद वे श्रीकृष्णरूपमें इस क्षेत्रमें बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शनके साथ आविर्भूत हुए। सुदर्शनचक्र जगन्नाथजीके हस्तमें है, जो कि विष्णुका चतुर्थ स्वरूप है। इन मूर्तियोंमें जगन्नाथ-बलभद्रके दो हाथ हैं और उनमें पद्म तथा अँगुली नहीं हैं। सुभद्राके हाथ नहीं हैं। जगन्नाथ विष्णुरूप हैं और बलराम शिवरूप हैं। पुरुषोत्तम ही जगन्नाथ हैं।

चतुर्धा मूर्ति चार वेद-स्वरूप हैं। जगन्नाथजी ऋग्वेद, बलभद्र सामवेद, सुभद्रा यजुर्वेद और सुदर्शन अथर्ववेद हैं।

चतुर्धा मूर्तिका तत्त्व शरीरमें श्रवण, नयन, अधर, नासिकाका है। श्रवण बलभद्र, नयन जगन्नाथ, अधर सुभद्रा और नासिका सुदर्शन हैं।

एक कवि इनके तत्त्वोंको इस प्रकार अंकित करता है—आँखकी पुतलीका सफेद भाग बलभद्र हैं, उसके ऊपर काला भाग सुभद्राजी हैं, उसके अन्दर जो पुतली है, वही जगन्नाथजी हैं।

'श्रीं' बीज बलभद्रका, 'ह्रीं' बीज सुभद्राका और 'क्लीं' बीज जगन्नाथजीका है।

कर-चरणविहीन मूर्ति केवल सुभद्राकी है। तीनों मूर्तियोंके चरण नहीं हैं, आँखें चित्रमें हैं, प्रतिमामें नहीं हैं। नासा बतानेके लिये कुछ ऊँचा नासिकाका स्थान बना दिया है। नासिकामें छिद्र नहीं है। कर्ण प्रतिमा तथा चित्रमें भी नहीं हैं। हाथके आकार भी खण्डित हैं।

ज्येष्ठ पूर्णिमासे आषाढ़ अमावस्यातक भगवान् मौसीके घरमें रहते हैं। तब मन्दिर बन्द रहता है।

इस क्षेत्रमें शिव और विष्णु दोनोंका पूजन और मन्दिर आदिकालसे है।

बलरामको शिवरूप माना है। स्कन्दपुराणमें सुभद्राको भद्रकालीका रूप बताया है।

पंचदेवताकी उपासनाका समन्वय इसी मन्दिरमें पाया जाता है।

इन्द्रद्युम्नने जिस महातरुका महोदधिमें दर्शन किया था, उसकी स्थिति इसी संसार-प्रपंचवृक्षके समान है। उस महातरुका मूल जलमें तैरता हुआ ऊर्ध्वमूल और शाखा समुद्रमें निमग्न होनेके कारण अधःशाखा हुआ है। गीतामें जिस प्रकार अश्वत्थ वृक्षका वर्णन दिया है, इन्द्रद्युम्नने उसी प्रकारका वृक्ष देखा था।

महाप्रसाद

जगन्नाथजीके मन्दिरमें भगवान्‌के भोगको बादमें विमलाको दिखाया जाता है। तब वह महाप्रसाद कहलाता है। पहले पुरुषोत्तमक्षेत्रके केवल १० मीलकी गिर्दमें महाप्रसाद माना जाता था। वर्तमानमें ऐसा नहीं मानते। भारतके सभी स्थानोंमें महाप्रसादका प्रभाव है। जगन्नाथजीका भोग महाप्रसादके रूपमें प्रचलित है। तीनों मूर्तियोंमेंसे किसी एक भगवान्‌को भोग लगानेसे महाप्रसाद नहीं होता। तीनों मूर्तियोंको एक साथ भोग लगाकर बादमें विमलाको भोग लगाकर जो प्रसाद होता है, वही महाप्रसाद कहलाता है।

रथयात्रा

हिन्दुओंका पुरीकी रथयात्रा एक प्रधान उत्सव है। यह भारतमें क्या, पृथ्वीमें अद्वितीय है। वैदिक ग्रन्थोंमें रथयात्राका उल्लेख है। रथयात्रा बहुत प्राचीनकालसे है। सूर्यका रथ विख्यात है। रामायण-महाभारतमें रथोंका वर्णन है। श्रीकृष्णका नन्दीघोष, सुभद्राका देवदलन,

बलरामका तालध्वज रथ है।

पुरीकी रथयात्रा ९ दिनकी होती है। प्रधान मन्दिरसे तीनों मूर्तियोंको तीन रथोंपर गुंडिचाके घर ले जाते हैं। गुंडिचा देवीका मन्दिर प्रधान मन्दिरसे डेढ़ मील दूर है। इन्द्रद्युम्नने इसी स्थानमें अश्वमेध यज्ञकी वेदी तैयार की थी। यहीं इन मूर्तियोंका आविर्भाव हुआ था। आषाढ़ शुक्ल २ को यह यात्रा होती है।

इस मन्दिरकी परिक्रमामें बहुतसे अन्य मन्दिर हैं। जगमोहनसे लगा नाट्यमन्दिर है। भोग-मण्डप दर्शनीय है। सिंहद्वार मुख्य द्वार है। आनन्दबाजार, स्नानवेदी, चाहनी-मण्डप, रसोईघर आदि अनेक स्थान मन्दिरके परकोटाके भीतर दर्शनीय हैं।

इस क्षेत्रके पंचतीर्थ विख्यात हैं—(१) मार्कण्डेय-कुण्ड, (२) अक्षयवट, (३) गरुड़, (४) उग्रसेनदर्शन और अन्य बहुतसे तीर्थ हैं। इस क्षेत्रका वर्णन मैंने बहुत संक्षेपसे किया है। इस वर्णनसे मेरा उद्देश्य इस क्षेत्रका प्रभाव बतानेका है। भक्तिमें भगवान् कहाँ प्रकट नहीं होते। भगवान्ने यहाँ स्वयं प्रादुर्भूत होकर गुंडिचा देवीकी भक्तिकी महिमा बतलायी है। इसी स्थानमें भगवान्की आभा प्राप्त होती है। मनुष्य इनके दर्शनसे निष्पाप होकर दिव्यधामके अधिकारी होते हैं। यह क्षेत्र धन्य है। धन्य हैं वे, जो इस क्षेत्रकी यात्राकर कृतार्थ होते हैं।

सच्चा ज्ञान

बोधकथा—

(गोलोकवासी सन्त श्रीकेशवरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

नामदेव महाराष्ट्रके महान् सन्त थे। परंतु इनके मनमें सूक्ष्म अभिमान घर कर गया था कि भगवान् मेरे साथ बातें करते हैं। ये विठोबाजीके साथ बातें करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि महाराष्ट्रमें सन्त-मण्डली एकत्रित हुई। तब मुक्ताबाईने गोरा कुम्हारसे कहा—'इन सन्तोंकी परीक्षा करो। इनमें पक्का कौन है? कच्चा कौन है?'

गोरा कुम्हारने सभीके मस्तकपर ठीकरा मारकर परीक्षा करनेका निश्चय किया। किसी भक्तने इससे मुँह नहीं बिगाड़ा। परंतु नामदेवके माथेपर ठीकरा मारा गया तो नामदेवने मुँह बिगाड़ा। उनको अभिमान हुआ कि कुम्हारद्वारा घड़ेकी परीक्षा किये जानेकी रीतिसे क्या मेरी परीक्षा होगी?'

गोरा काकाने नामदेवसे कहा—'सबका माथा पक्का है। एक तुम्हारा माथा कच्चा है। तुम्हारा माथा पक्का नहीं। तुमको गुरुकी आवश्यकता है। तुमने अभीतक व्यापक ब्रह्मका अनुभव किया नहीं।'

नामदेवने विठोबाजीसे फरियाद की। विठोबाजीने कहा—'गोराभक्त जो कहते हैं, वही सच है। तुम्हारा मस्तक कच्चा है। मंगलबेड़ामें मेरा एक भक्त बिसोबा खेचर है। उसके पास तू जा, वह तुझे ज्ञान देगा। नामदेवजी बिसोबा खेचरके पास गये। उस समय बिसोबा शिवजीके मन्दिरमें थे। नामदेव महादेवजीके मन्दिरमें गये। वहाँ जाकर देखा कि बिसोबा खेचर शिवलिंगके ऊपर पैर रखकर सो रहे थे। बिसोबाको मालूम हो गया था कि नामदेव आ रहे हैं, इसलिये उनके ज्ञान-चक्षु खोलनेके लिये उन्होंने ऐसा काम किया था।

नामदेव नाराज हुए। उन्होंने बिसोबाको शिवलिंगके ऊपरसे अपना पैर हटानेको कहा। बिसोबाने कहा—'तू ही मेरा पैर शिवलिंगके ऊपरसे उठाकर किसी ऐसे स्थानपर रख, जहाँ शिवजी न हों। नामदेव जहाँ बिसोवाका पैर रखने लगे, वहीं-वहीं शिवजी प्रकट होने लगे। समस्त मन्दिर शिवलिंगोंसे भर गया।

नामदेवको आश्चर्य हुआ। तब बिसोबाने कहा—'गोरा काकाने जो कहा था कि तेरी हाँड़ी कच्ची है, वह ठीक है। तुम्हें हर जगह ईश्वर दीखते नहीं। विठोबा सर्वत्र विराजे हुए हैं। तू सबमें ईश्वरको देख। भक्तिको ज्ञानके साथ भजो।'

नामदेवजीको अब सबमें विठोबाजी ही दीखने लगे। वे वहाँसे वापस आकर मार्गमें एक वृक्षके नीचे खाने बैठे। वहाँ एक कुत्ता आया और रोटी उठाकर ले जाने लगा। अब तो नामदेवजीको कुत्तेमें भी विट्ठल दीखते। रोटी रूखी थी। नामदेवजी घीकी कटोरी लेकर कुत्तेके पीछे दौड़े। पुकारकर कहने लगे—'विट्ठल! खड़े रहो, रोटी कोरी है, घी चुपड़ दूँ।' नामदेवजीको अब सच्चा ज्ञान प्राप्त हो चुका था।

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❀ हम अपने हाथोंमें कोई डण्डा-हथियार रखें तो कभी-न-कभी उसे चलानेकी इच्छा होगी, हथियारका कुसंग किसीको कष्ट देनेवाला हो जायगा। यदि हम हाथमें माला रखें तो उससे जप ही होगा। उससे हम किसीको चोट नहीं पहुँचा सकेंगे। यह मालाका सत्संग हुआ। जैसे गाय बछड़ेके पीछे-पीछे चलती है, उसी तरह सत्संगी नामजापक प्रेमीके पीछे-पीछे भगवान् चलते हैं। स्वयं भगवान् उसको खोजते हैं। आप सत्संगको खोजेंगे, तो ईश्वर आपको खोजेगा। जैसे अस्पतालमें दाखिल रोगी डॉक्टरके अधीन होता है, उसकी चिन्ता डॉक्टर करता है, उसी तरह अपनेको सत्संगमें समर्पित कर देनेसे हमारी बिगड़ी बनानेकी जिम्मेदारी भगवान्‌के ऊपर पहुँच जाती है।

❀ सन्तमें और पारसमें बड़ा अन्तर है। पारस लोहेको सोना बना देता है, पर लोहेको पारस नहीं बना सकता है, पर सन्त किसी पापीको अपने समान सन्त बना सकता है। कवियोंने सन्तके स्वभावको नवनीतके समान कोमल कहा है, पर वे ठीक नहीं कह सके, क्योंकि मक्खनमें जब ताप लगता है तब वह पिघलता है, दूसरेमें ताप लगनेसे वह नहीं पिघलता है। सन्त अपने दु:खसे नहीं दूसरेके दु:खसे द्रवीभूत हो जाते हैं।

❀ जब हम भगवत्-स्मरणको छोड़कर संसारी चिन्तन करने लग जाते हैं, वह समय अच्छा नहीं कहा जाता है। उससे भी कष्टप्रद वह समय है, जब हमको प्रियवियोग होता है। संसारी सम्पर्कका यह कष्ट विवेकके द्वारा त्यागा जा सकता है, परंतु जब कभी भावुक भक्तसे वियोग होता है तो वह भुलाये नहीं भूलता है। उसे याद रखनेमें भक्तिकी साधना है; क्योंकि वह सन्त-स्मरण है। सन्त-स्मरण कर्तव्य है। ***‘संत मिलन सम सुख जग नाहीं।’*** सन्तसे मिलनेके समान दूसरा सुख नहीं है और सन्तसे वियोगके समान दूसरा दु:ख नहीं है, पर इसका सच्चा अनुभव सन्त-हृदय ही करेगा। इस सम्बन्धमें रामायणका वाक्य याद आता है। सन्त-असन्त दोनों ही दु:खप्रद हैं। भेद यह है कि—

बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।
मिलत एक दुख दारुन देहीं॥

❀ सत्संगसे प्राणी सज्जन बन जाता है और कुसंगसे दुष्ट बन जाता है। सज्जनके साथ रहना, उनसे वार्तालाप करना, उन्हींसे विवाद करना, उन्हींसे मित्रता करनी चाहिये अर्थात् लौकिक व्यवहार भी सज्जन मनुष्योंके साथ ही करना चाहिये। सज्जनके समीप वातावरण शान्त रहता है। किसी प्रकारका भय नहीं रहता है। लोहा पानीपर तैर नहीं सकता है, पर यदि उसे एक बड़ी लकड़ीका साथ मिल जाय तो लोहा भी पानीमें नहीं डूबेगा। उसी प्रकार सन्तके साथ साधारण पुरुष भी भवसागरसे तर जाता है। सज्जन मनुष्य संसारमें रहते हुए भी संसारसे अलग रहते हैं। भक्त सबका होता है।

❀ भक्तकी प्रसन्नता अपनेमें होती है। वह संसारकी चीजोंसे नहीं सत्संगसे प्रसन्न होता है। भगवत्कथासे, सेवासे प्रसन्न होता है। स्वाती नक्षत्रमें जलकी बूँद केलेके संगमें पड़कर कपूर बन जाती है, वही बूँद सीपमें पड़कर मोती बन जाती है, वही बूँद सर्पके मुखमें पड़कर विष बन जाती है। इसी तरह नीचके संगमें पड़कर प्राणी विषयी नीच बन जाता है। मध्यम श्रेणीके संगमें कपूरकी तरह कीर्तिमान् बनकर लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। उत्तम सत्संगमें रहकर मनुष्य सच्चा मोती अर्थात् भक्त बन जाता है। मोतीका मूल्य घटता नहीं है। भक्त लोकमें रहकर सबका भला करता है।

[‘परमार्थके पत्र-पुष्प’ से साभार]

कबीर-जयन्तीपर विशेष—

कबीरका सामाजिक चिन्तन

(डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त)

कबीरका युग अनेक विरोधोंका युग था। तत्कालीन सामाजिक जीवनमें अनेक विरोधाभास तथा विषमताएँ व्याप्त थीं। सामाजिक संस्कारोंको अनेक तरहकी विकृतियाँ जकड़ चुकी थीं; हिंसा और स्वार्थवृत्तिने मानवताको हिला दिया था। रूढ़िग्रस्त मानव-समाज दिग्भ्रमित हो चुका था। इन्हीं परिस्थितियोंमें कबीरका अभ्युदय हुआ। कबीरने असत्य, अन्धविश्वासों और सामाजिक रूढ़ियोंके विरुद्ध विद्रोहका स्वर मुखरितकर जन-जनका मार्गदर्शन किया।

कबीरके मनमें एक मानवतावादी समाजकी स्थापनाका स्वप्न था। इसके लिये उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समाजके आपसी भेदभावको मिटानेका प्रयास किया। उन्हें फटकारा और उनमें एकता लानेका प्रयास किया। उन्होंने कहा—***'अरे इन दोउन राह न पाई।'***

कबीरके अनुसार यह सारा जगत् एक ही तत्त्वसे उत्पन्न है। इसलिये भेददृष्टि मिथ्या है। मानव-मानवमें भेद परम अज्ञानताका द्योतक है। कबीर इसी तत्त्वदृष्टिसे प्रेरित थे। वे कहते हैं—

एक बूँद एकै मलमूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जोति से सृष्टि रची है, को वामन को सूदा॥
एकहि जोति सकल घट व्यापक दूजा तत्त्व न होई।
कहें कबीर सुनो रे सन्तो भटकि मरै जनि कोई॥

ऐसा समाज जिसमें भेद-भाव न हो, छुआछूत न हो और मनुष्यमात्र समान समझे जायँ तो एक सुन्दर समाजकी रचना हो सकती है। अतः वे इस प्रकारके भेदभावोंका विरोध करते हैं। उनका कहना है कि एक ही बूँदसे परमात्माने सकल सृष्टिकी रचना की है, तो फिर किसी प्रकारका भेदभाव क्यों?

कबीर मनकी पवित्रता या आन्तरिक शुद्धतापर बल देते थे। कबीरके अनुसार माला जपना, सिर मुड़वाना आदि बाह्य चिह्न हैं।

माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माँहिं।
मनुवाँ तो चहुँ दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं॥

कबीर ढकोसले, पाखण्ड और पुस्तकीय ज्ञानतकके विरोधी थे। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, जप-तिलकके स्थानपर वे ईश्वरीय प्रेमको सर्वोपरि महत्त्व देते थे। उन्होंने कहा—

पाहन पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहार।
ताते ये चकिया भली पीसि खाय संसार॥
पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेमका पढ़े सो पंडित होय॥

अहंकारको ईश्वरप्राप्तिमें सबसे बड़ा बाधक माननेवाले कबीरने कहा—

जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अँधियारा मिटि गया जब दीपक देख्या माहिं॥

कबीरने साधनाके सभी क्षेत्रोंमें बाह्याचारका विरोध किया है। वे सारे औपचारिक कर्मविधान जिनके मूलमें कोई तत्त्व नहीं है, कबीरके लिये व्यर्थ हैं। कबीरने विवेकरहित तिलक लगानेवालोंको आडम्बरी ही माना है।

कबीर वेश्नो भया तो क्या भया बूझ्या नहीं बमेक।
छापा तिलक बनाइ करि दगध्या लोक अनेक॥

कबीरने देखा जिन साधकोंके पास लोग मुक्तिकी कामनासे जाते हैं, वे तो स्वयं अनेक प्रकारके वन्धनोंसे जकड़े हुए हैं। सभी बाह्याडम्बरके बन्धनमें बँधे हैं। आदर्शोंकी बातें तो बहुत होती हैं, पर व्यवहार उन आदर्शोंके विपरीत दिखायी देता है। कबीरने कथनी और करनी, वचन और कर्मके इस विरोधपर करारे प्रहार किये तथा कर्म और वचनकी एकतापर बल दिया।

कथनी मीठी खाँड़ सी करनी विष की लोइ।
कथनी तजि करनी करै विष से अमृत होइ॥

कबीरने मानवमात्रको सत्कर्म करनेकी प्रेरणा दी।

उनके अनुसार कोई भी व्यक्ति ऊँचे कुलमें उत्पन्न हो जानेमात्रसे बड़ा नहीं हो जाता है, जबतक कि उसके कर्म अच्छे न हों।

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ जे करणी ऊँच न होय।
सुबरन कलस सुरै भरा साधू निन्दा सोय॥

कबीरने केवल सामाजिक और धार्मिक बुराइयोंका विरोध ही नहीं किया, वरन् अपने काव्यमें सदाचारपूर्ण जीवनका उच्च आदर्श प्रस्तुत किया। कबीरके लिये सदाचारका सर्वाधिक महत्त्व था। उनके अनुसार आदर्श मानवको ईश्वरमें विश्वास करनेवाला, संसारके आकर्षणोंसे विरक्त, समस्त भेदभावसे परे तथा मन–वाणी–कर्मसे एक होना चाहिये। मानवको सत्यका मार्ग अपनाना चाहिये।

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय साँच है ताके हिरदय आप॥

सत्यकी प्रतिष्ठा, अहिंसाका महत्त्व, अतिथिसेवा, सन्त–समागम, ब्रह्मचर्य, भोग और आसक्तिरहित जीवन, समाजसे केवल अपनी आवश्यकतानुसार धनप्राप्ति आदिका प्रतिपादन कबीरने किया है। उन्होंने ईश्वरसे याचना की—

साईं इतना दीजिए जामें कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाय॥

जीव–हिंसासे दुखी कबीरने मानवको अहिंसाका मार्ग दिखाया।

बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है ताको कौन हवाल॥

कबीर स्वभावसे निडर थे। सच्ची बात करनेमें उन्हें तनिक भी झिझक नहीं होती थी। यदि सत्यको उन्हें कड़वे ढंगसे भी कहना पड़ा तो उन्होंने उसे कहनेमें संकोच नहीं किया। लाग–लपेट रखना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। वे जानते थे कि अज्ञानताके कारण लोग सत्यसे कतराते हैं और असत्यसे चिपके रहते हैं। पर कबीरके लिये समाजका हित सर्वोपरि था। उन्होंने कहा—

कबिरा खड़ा बाजार में माँगे सबकी खैर।
ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर॥

लोकचेतनाको जाग्रत् करनेके लिये समाजमें व्याप्त अन्धविश्वास और भेद–बुद्धिके प्रति सन्तोंकी सद्‌चिन्ताने शुद्ध मानववादका प्रचार किया। सभीको ईश्वरकी सन्तान समझना, मनुष्यमात्रको समाजके रूपमें देखना और कुल मिलाकर उदार मानवतावादी दृष्टिको वाणी देना सन्तोंके अभ्यासमें शामिल था। इस तरहकी समताकी दृष्टि और भ्रातृत्व भावनाका रूप कबीरमें दिखायी देता है। मानवीयता और सामाजिक एकीकरण–जैसी पवित्र आदर्श भावनाओंके पवित्र ध्वजको कबीरने फहराया। कबीरने लोकचेतनाको जगानेके लिये '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' के दृष्टिकोणका अनुसरण किया।

कबीरदासका ध्यान आर्थिक भेदभावकी ओर भी गया था। समाजमें व्याप्त आर्थिक विषमताको भी उन्होंने देखा था। समाजमें धनिकोंको सम्मान मिलता था, पर निर्धनोंको तनिक भी आदर नहीं मिलता। कबीरने कहा—

निर्धन आदर कोई न देई।
लाख जतन करै ओहु चित न धरई॥

कबीरका मानना है कि धनी और निर्धन दोनों भाई–भाई हैं। वास्तविक निर्धन तो वह है, जिसके हृदयमें भगवान्‌का नाम नहीं है।

कहै कबीर निर्धन है सोई।
जाके हिरदै नाम न होई॥

जीवनकी सुविधाएँ अच्छे कर्मोंका और असुविधाएँ बुरे कर्मोंका परिणाम हैं। सुख–दु:ख अपने ही कर्मोंका भोग है। कबीर यह मानते थे कि भगवान्‌ने जिसके लिये जितना निश्चित किया है, उसे उतना ही प्राप्त होगा।

जाकौ जेता निरमया ताकौ तेता होइ।
राई घटै न तिल बढ़े जे सिर कूटै कोइ॥

कबीर मानवताके पर्याय हैं। करुणा, त्याग, प्रेम, क्षमा, ममता, सहिष्णुता, सेवा, विश्वास और समर्पण–जैसे तत्त्व मानवताकी रचनामें सहायक होते हैं। कबीरका मानव–संवेदनात्मक दृष्टिकोण उनके सुधारक–रूपमें देखा जा सकता है।

इस वर्ष १४ जून २०२२ ई० (ज्येष्ठ पूर्णिमा)–को संत कबीरदासजीकी जयन्ती है।

मानस और मानसकार—एक परिचय

(आचार्य श्रीरसिकबिहारीजी 'मंजुल')

यदि आप साहित्यानुरागी धर्मदृष्टिसम्पन्न हैं, राष्ट्रभाषा देवनागरी हिन्दीसे आपका सच्चा अनुराग है तो जगत्-साहित्यके निराले ग्रन्थ श्रीरामचरितमानसके विषयमें मेरी बात ध्यान लगाकर सुनियेगा—

१-यह श्रीरामचरितमानस कागजसे बनी एक किताबमात्र नहीं है, यह वर्तमान श्वेतवाराहकल्पके वैवस्वत मन्वन्तरके २८वें कलियुगके महा जलाशयमें उत्पन्न वह शतदल (स्वर्णिम कमलपुष्प) है, जिसपर परब्रह्म परमेश्वररूपी भँवरेकी दिव्य झंकार सुनायी देती है।

२-इसके पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनानेसे सभी श्रोताओंको दिव्य-सुख, परम आनन्द और आत्मिक अनुभूतियोंकी आनन्दमयी तृप्ति महसूस होती है।

३-इसके रचयिता एक संसार-त्यागी, परम वैष्णव हिन्दी, संस्कृति एवं संस्कृतके उद्भट विद्वान् कविशिरोमणि हैं।

४-इस महाकाव्यका नाम 'श्रीरामचरितमानस' है, जिसके सर्वप्रथम गायक योगीश्वर भगवान् शिवशंकर हैं। जो सुननेमात्रसे ही दैहिक-दैविक तथा भौतिक दुःख-शोक और दरिद्रताको भस्म करनेवाला, कलियुगकी कुचालोंसहित समस्त पापराशिको धो डालता है।

५-इसे सर्वप्रथम शिवजीसे शिवा (सतीजी)-ने सुना, तभी इसका नामकरण श्रीशिवजीने ही किया।

६-शिवजीने इसे 'श्रीरामचरितमानस' कहा।

७-इस 'श्रीरामचरितमानस' महाकाव्यमें सम्पूर्ण वैदिक-साहित्य (वेद-पुराण, स्मृति, उपनिषद्, आगम, निगम, तन्त्र तथा लोककथाओंका मिश्रण है। इसमें भगवान् श्रीरामवर्णित नवधा-भक्तिका भी वर्णन है।)

८-इसमें लोकमर्यादाओंका प्रचुर आख्यान हुआ है। भारतके प्रायः सभी ऋषि-मुनियोंका इसमें कुछ-न-कुछ योगदान अवश्य है।

९-इसमें साहित्यशास्त्रके सभी नवरसोंका चित्रण है।

१०-इसमें भगवान्‌के निर्गुण-सगुण आदि सभी गुणोंका विवरण मिलता है।

११-यह सर्वाधिक गुणयुक्त प्रबन्ध-काव्य है, जिसमें छन्द, सोरठे, दोहे, चौपाइयाँ, अर्धालियाँ आदि हैं। इसके सात काण्ड हैं, इसमें चार संवाद हैं, जिसे सुनते-सुनते ब्रह्मानन्दकी अनुभूति होने लगती है। चार—संवादोंमें १-पहला शिव-पार्वती-संवाद है, २-दूसरा काकभुशुण्डि-गरुड़-संवाद, ३-तीसरा याज्ञवल्क्य-भारद्वाज-संवाद और ४-चौथा गोस्वामी श्रीतुलसीदास और संतोंका संवाद है।

१२-इसके पठन-पाठनसे ग्रीष्मके तापपर पड़नेवाली प्रथम वर्षाकी रिमझिम-रिमझिम शीतल मन्द-सुगन्धित बौछार-जैसी अनुभूति होती है, जो त्रिविध तापोंको हर लेती है।

१३-जितना प्रचार-प्रसार इस महाग्रन्थरत्नका हुआ है, उतना प्रचार-प्रसार संसारके किसी भी ग्रन्थका नहीं हुआ है।

१४-इसकी दैवीय शक्तिके आगे आसुरी शक्तियाँ स्वतः ही निर्मूल होकर दम तोड़ देती हैं। भूत-पिशाच आदि इससे दूर भागते हैं।

१५-इसकी वर्णनशैली संगीतमयी होनेसे यह करोड़ों-करोड़ों धर्मप्रिय जनताका कण्ठहार है। साहित्यका सम्पूर्ण सौन्दर्य इसमें मूर्तिमान् है।

१६-इस महाकाव्यमें चारों पुरुषार्थ (१-धर्म, २-अर्थ, ३-काम और ४-मोक्ष)-का वर्णन चित्ताकर्षक हुआ है। जप, तप, ज्ञान, योग, वैराग्य, सदाचार और अध्यात्मसहित इसमें साहित्यके सभी रसों जैसे—शृंगार, शान्त, वीर, बीभत्स आदिका वर्णन मिलता है।

१७-इसमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामजीकी अनुपमेय कीर्तिका सजीव वर्णन हुआ है।

१८-इस मानसरूपी जलाशयमें नवधाभक्तिमयी नौ रंगोंवाली मछलियाँ तैरती रहती हैं। रंग-बिरंगे कमलपुष्परूप जल-जन्तु हिलोरें लेते रहते हैं।

१९-इसमें आयी विविध कथाएँ अनेक फुलवारियाँ बाग, वन आदि, जिनमें तरह-तरहके पक्षी जैसे—तोते, मैना तथा चातक चारों ओर उड़ते रहते हैं। इसके पाठक तथा पाठिकाओंके मनरूपी माली अपनी आँखोंसे स्नेहरूपी जलसे सींच-सींचकर इसे हर समय छिड़काव करते रहते हैं, ताकि इसका मधुवन हर ऋतुमें हरा-भरा रहे।

२०-जो पाठक इसे श्रद्धा-भक्ति और वैराग्य-भावनासे पढ़ते हैं, वही इस जलाशयके सजग प्रहरी हैं।

२१-पापी, दुष्ट, दुरात्माओं और तामसिक विचारवालोंको इसकी पवित्र सुगन्धि पास नहीं आने देती है। अत: यह सदा-सर्वदा पवित्रधाम बना रहता है।

२२-धोखेसे भी जो अधम, पापी, दुराचारी इस पवित्र मानसरूपी जलाशयमें स्नान कर लेगा, उसकी बुद्धि तुरन्त पवित्र हो जायगी, ऐसा चमत्कार देखा गया है। इसकी भक्तिधारा गंगा बनकर सरयू नदीमें मिलकर सभीको प्रभु श्रीराम-सीता और लक्ष्मणसहित रामावतारके अन्तकालमें वैकुण्ठमें पहुँचा गयी थी।

२३-मानसमें वर्णित शिव-शिवा-विवाहमें जो-जो शिवगण आये थे, वही शिवगण इस मानसरूपी जलाशयके मकरादिक भयंकर जलजन्तु हैं।

२४-इस मानसरूपी जलाशयकी तरंगें रामविवाहपर बधाइयाँ देने आयी थीं।

२५-मर्यादाके अनेकानेक सीपी, शंखादि इस महान् जलाशयमें देखनेको मिल जाते हैं।

२६-जो स्त्री-पुरुष ऐसे जलाशयसे दूर रहते हैं, वे निश्चय ही कलियुगद्वारा ठगे गये हैं।

२७-मानस चुम्बक है और मानसके श्रोता लोहा हैं। जो इस मानसको छू लेता है, वह तुरन्त ही स्वर्ण बन जाता है। मानसरचयिताको मानसरचयिता बनानेवाली रत्नावलीने अपने पतिको यह कहकर सन्त-ऋषि तथा महाकवि बना दिया था—

लाज न आवत आपको, दौरे आयो साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चर्ममय देह मम, तामैं ऐसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होत न तब भव भीति॥

अपनी प्राणप्यारी पत्नीकी ऐसी कठोर और अप्रत्याशित वज्रसे भी कठोर कुटिल वाणीको सुनकर वह भावभक्तिभरा कवि-हृदय चीत्कार कर उठा। थोड़ी देरके लिये वह काव्यकार आँखें मूँदे बैठा रहा, फिर जब उसने आँखें खोलीं तो पाया चारों ओर सौ-सौ सूर्यों-जैसा प्रकाश है और उस प्रकाशपुंजमें उसने देखा मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम मुसकरा-मुसकराकर उसे अपने पास बुला रहे हैं। शीघ्र ही वह प्रभा विलुप्त हो गयी। उसने देखा—

इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान । मानो मार्तण्ड हो मूर्तिमान॥

तत्काल उसकी दृष्टि वाल्मीकिकृत रामायणपर पड़ी। उसे लगा कोई उसकी आत्मामें छिपा उसका गा-गाकर मार्गदर्शन कर रहा है—

त्रेता काव्य निबंध करी सतकोटि रमायन
इक अच्छर उच्चरैं ब्रह्म हत्यादि पलायन।
अथ भक्तनि सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी
राम चरन रस मत्त रटत अहनिसि ब्रतधारी॥

शीघ्र ही उन्हें उनके गुरु श्रीनरहरि मिले, जो गा रहे थे—

डगर डगर अरु नगर नगर माहि,
कहनि पसारी रामचरित अवलि की।
कहैं कवि अम्बादत्त राम की लीलन सों,
भरि दीनो भीर सब चहलि पहलि की॥
शूद्रन ते ब्राह्मण लौं, मूरख से पंडित लौं,
रसना डुलाई, सबै जय जय बलि की।
यम को भगाय पाप पुंज को नशाय आज,
तुलसी गुसाईं नाक काटि लीनी कलि की॥

यमुना नदीके किनारे 'दूबे पुरवा' नामक एक गाँव था। उसमें सभी जातिके लोग रहते थे, उसीमें वर्तमान बाँदा जिलेमें रामपुर नगरके राजगुरु जो पाराशर गोत्रके सरयूपारी ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम श्रीआत्माराम दूबे था और उनकी धर्मपत्नीका नाम देवी हुलसी था। उन्हींके संग साथ रहते-रहते उनमें काव्य-स्फुरण हुआ।

संवत् १५५४ में तुलसीदास जन्मे थे। जन्मपत्रीका नाम था—रामबोला। जन्मते ही वे 'राम-राम' बोले थे। उनके मुखमें दाँत भी थे। माँ-बाप समझे यह कोई पूर्वजन्मका दैत्य-नराधम है। अत: इन्हें त्याग दिया।

कैलासपर्वतपर बैठे शिवशंकरके कहनेसे माता शिवा एक साधारण स्त्रीका रूप रखकर इनका लालन-पालन करने लगीं। इनमें चमत्कारिक काव्य-प्रतिभा देखकर उस समयके महान् भक्त महात्मा नृसिंहदासजीने इन्हें अपनाकर अपना शिष्य बनाकर शास्त्र-ज्ञान कराया। यही श्रीनृसिंहदासजी इनके गुरु नरहरिदासजी बने। इनकी प्रशंसामें इन्होंने एक सोरठा लिखा—

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥

सर्वप्रथम तुलसीदासको सोरों (उत्तरप्रदेशका एक गाँव, जो कासगंज, जनपद एटाके पास पड़ता है)-के एक महात्माने वाल्मीकिकृत रामायण सुनायी, जिसने इन्हें रामायणकार बना दिया। स्वयं तुलसीदासने इस सच्चाईको अपने शब्दोंमें यह लिखकर स्वीकार किया।

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहि तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥

शिक्षण-प्रशिक्षणका प्रारम्भ—अब नरसिंहदास (नरहरिदास)-की छत्रछायामें ये कवि तुलसीदासजी पले-बढ़े और शास्त्र-शिक्षा पाकर धर्मशास्त्रमें पारंगत हो गये। संवत् १५६१ शुक्रवारके दिन इनका यज्ञोपवीत (विद्यारम्भ-संस्कार) सम्पन्न हुआ। इनके सभी कार्य शास्त्रीय विधि-विधानसे पूर्ण हुए; क्योंकि शिव-शिवाकी इनपर सुदृष्टि थी। रामजी भी इनसे प्रसन्न थे। कहावत है—

जापर कृपा राम कै होई। तापर कृपा करैं सब कोई॥

तुलसीदासका अभ्युदय—तुलसीदास रामभक्त हुए। सदाचारी हुए, नित्य शौचादिसे निवृत्त होकर अवशिष्ट शौचजल एक वृक्षकी जड़में डाल दिया करते थे। इस वृक्षपर एक प्रेत रहता था। इनसे प्रसन्न होकर बोला—'मैं तुम्हारी भक्तिभावनासे प्रसन्न हूँ। कोई वर माँग लो।' तुलसीदासजी बोले—'मुझे रामजीके दर्शन करा दो।' प्रेत बोला—'देखो, तुलसीदास! समीपके ही एक मन्दिरमें भगवान् रामकी कथा होती है। वहाँ एक गरीब मैला-कुचैला कपड़ा पहने कोढ़ीके रूपमें सबसे पहले आता है और सबके बादमें जाता है। वही श्रीरामभक्त हनुमान्जी हैं। तुम उनके चरण पकड़ना, वह तुम्हें रामजीके दर्शन करा देंगे।'

अब हनुमान्जीसे मिलने तुलसीदास उस मन्दिर पहुँचे, वहाँ वे हनुमान्जीके श्रीचरणोंमें लोट गये। गद्गद होकर हनुमान्जी बोले—'वत्स! जाओ, चित्रकूटमें तुम्हें रामजीका दर्शन होगा।' उन्हें रामजीका साक्षात् दर्शन हुआ। जब तुलसीदासजी चन्दन घिस रहे थे, तब घोड़ोंपर सवार राम-लक्ष्मण आकर उनसे बोले—'बाबा! चन्दन लगा दो।' जैसे ही तुलसीदासने चन्दन लगाया, वैसे ही हनुमान्जी तोता बनकर वृक्षपर बैठकर बोल पड़े—

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसैं तिलक देत रघुबीर॥

तुरन्त तुलसीदासने भगवान् रामका हाथ पकड़ लिया। पर भगवान् उनसे अपना हाथ छुड़ाकर घोड़ेपर चढ़कर चलते बने। तुलसीदास उनके रूपपर मोहित हो गये।

श्रीरामचरितमानसकी रचना प्रारम्भ हुई—अब तुलसीदास रामनगरी अयोध्यामें आकर रहने लगे। वहाँ रहकर इन्होंने संवत् १६३१ में श्रीरामचरितमानसकी रचना प्रारम्भ की। यही रचना संसारकी सर्वश्रेष्ठ रामायण कहलायी।

संबत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा।
नौमी भौमबार मधुमासा। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा॥

भक्त तुलसीदासको राम इस रूपमें दिखे—

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यान रूप बल धामा॥

दण्डी स्वामी मधुसूदन सरस्वतीने श्रीरामचरितमानसके विषयमें अपनी सम्मति इस प्रकार लिखी है—

आनन्दकानने ह्यस्मिञ्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितामञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥

इस श्लोकका काव्यानुवाद काशिराज महाराजने इस प्रकार किया—

तुलसी जंगम तरु लसे आनंदकानन खेत।
कविता जाकी मंजरी राम भ्रमर रस लेत॥

तुलसीदासजीका ध्येय—तुलसीदासजीने भगवान् श्रीरामके अतिरिक्त किसी भी नरके चित्रण न करनेको अपना ध्येय बनाकर कहा—जो कवि किसी नरका काव्य लिखेगा, उसपर माँ सरस्वती सिर धुन-धुनकर पछता-पछताकर रोयेगी।

कीन्हें प्राकृत जन गु गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥

तुलसीदासजीके महाप्रयाणके विषयमें यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत सोलह सौ असी असी गंग के तीर।
श्रावण श्यामा तीज शनि तुलसी तज्यो सरीर॥

इस वर्ष ४ अगस्त २०२२ ई० (श्रावण शुक्ला सप्तमी)-को गोस्वामी तुलसीदासजीकी जयन्ती है।

कालिदासके काव्यमें काश्मीर-वर्णन

(डॉ० श्रीसीतारामजी सहगल, एम० ए०, पी-एच०डी०)

कल्हणने राजतरंगिणीमें कहा है कि तीनों भुवनोंमें कैलास श्रेष्ठ है, कैलासमें सुन्दरतम हिमालय है और हिमालयमें प्रकृतिका अमरस्थान काश्मीर है। सम्भवतः इससे बढ़िया सुभाषित किसीने नहीं लिखा। इसका दर्शन करके हृदयकी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, सब संदेह दूर हो जाते हैं और सब पाप स्वयमेव क्षीण हो जाते हैं। दुनियाके सभी भोग यहाँ सुलभ हैं और यदि दुनियासे वैराग्य प्राप्त करना हो, तो भी काश्मीर निर्वाणका परमपद है।

प्राचीन कालमें राजा लोग वनविहारके लिये इस प्रदेशमें आते थे और महीनोंतक यहाँ रहकर मानसिक शान्ति प्राप्त करते और फिर अपनी राजधानीको लौट जाते थे। यहाँ विश्वविश्रुत वसिष्ठ, कश्यप-जैसे विद्वान् रहते थे, जिनके द्वारा कुल-परम्परासे प्राप्त विद्या प्रदान करनेके लिये 'स्वान्तःसुखाय' मानवमात्रहेतु आश्रम खोले गये थे। आजकी भाषामें यह स्थान यूनिवर्सिटीका महान् केन्द्र होता था। दूर-दूरसे ज्ञानके प्यासे वहाँ आकर अपनी प्यास बुझाते थे। संस्कृतसाहित्यमें इसका प्राचीनतम नाम शारदापीठ है, जो आजकल विश्वविद्यालयका दूसरा पर्यायवाचक शब्द है। काश्मीर शब्द भी संस्कृतके 'कश्यप+आश्रम' का बिगड़ा हुआ रूप है।

महाकवि कालिदासकी यद्यपि उज्जैनी तथा मालवप्रियता सुप्रसिद्ध है, तो भी काश्मीरसे उनका कम प्रेम न था। उनके साहित्यको पढ़नेसे यह मालूम होता है कि मानो वे काश्मीरी ही थे। उज्जैनीके सुप्रसिद्ध फूल शिरीषका वर्णन कालिदासने अपने ग्रन्थोंमें किया है, उसी तरह देवदारुका वर्णन भी है। यदि इन दोनों वर्णनोंकी तुलना की जाय तो ऐसा मालूम पड़ता है कि उसे देवदारु अधिक प्रिय था। रघुवंशके दूसरे सर्गमें दिलीप और सिंहका संवाद बड़ा ही रोचक है। इसमें काश्मीरकी झलक मिलती है। 'शेर राजा दिलीपसे कहता है कि मैं शंकरका कृपापात्र हूँ और मुझे इस सामने खड़े हुए व्यूढोरस्क तथा प्रांशु देवदारु वृक्षकी रक्षाके लिये शंकरने नियुक्त किया है। पार्वतीने स्वयं इसे अपने दूधसे सींचा है और इसके साथ स्कन्दकी तरह प्रेम करती हैं। एक बार किसी मतवाले हाथीने अपनी पीठसे इसकी छालको छील दिया! तब पार्वती ऐसी दुखी हुई थीं, जैसे संग्राममें स्कन्द शत्रुओंसे घायल हुआ हो।' इस हृदयग्राही उल्लेखसे मालूम पड़ता है कि हिमालयकी चोटियोंके शृंगार देवदारुसे उसका कितना स्नेह था। यही नहीं, कुमारसम्भवमें भी इस दिव्यदारुकी विभूतिका वर्णन किया गया है।

भागीरथीनिर्झरसीकराणां
वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः।
यद्वायुरन्विष्ठमृगैः किरातै-
रासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः॥

गंगाजीके झरनोंके फुहारोंसे लदा हुआ, बार-बार देवदारु वृक्षको कँपानेवाला और किरातोंकी कमरमें लगे हुए मयूरके पंखोंको फहरानेवाला यहाँका शीतल, मन्द और सुगन्धित पवन उन किरातोंकी थकानको मिटाता है, जो हिरणोंकी खोजमें हिमालयपर घूमते हैं।

काश्मीरका आजकलका वनपथ वही है, जो पुराने जमानेमें वसिष्ठाश्रम कहा जाता था। महात्मा लोग आज भी इसी नामसे पुकारते हैं। रघुवंशके आरम्भके सर्गोंमें इसी प्रदेशका मनोहारी वर्णन किया गया है। देवदारुनिकुंज, गौरी गुरुगह्वर तथा गंगाप्रपात इसी प्रदेशमें फैले हुए स्थानोंके उल्लेख हैं।

शाकुन्तलका सातवाँ अंक तो मानो काश्मीरका ही वर्णन है। दुष्यन्तके मुँहसे कविने कहा है कि यह स्वर्गसे भी अधिक निर्वृत्तिका स्थान है। मुझे ऐसा लगता है कि मैं अमृतके सरोवरमें स्नान कर रहा हूँ। हेमकूटका संकेत काश्मीरके 'हर मुकुट' पर्वतसे है, जिससे कनकवाहिनी नदी निकलती है। ब्रह्मसर, अप्सरातीर्थ, शचीतीर्थ, सोमतीर्थ, मालिनी शक्रावतारादि छोटे-छोटे स्थान उत्तर काश्मीरमें हैं।

कालिदासके ग्रन्थोंमें काश्मीर प्रदेशके दृश्योंका असाधारण वर्णन ही नहीं है, वह तो कविके हृदयकी पुकार है। हिमालयकी शीतप्रधानताकी सुषमाका वर्णन करते हुए कविने लिखा है—

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य
हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसंनिपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः॥

(कुमार० १। ३)

'इस अनगिनत रत्न उत्पन्न करनेवाले हिमालयकी शोभा हिमके कारण कम नहीं होती, क्योंकि जहाँ बहुत-से गुण हों, वहीं एकाध अवगुण भी आ जाय तो उसका वैसे ही पता नहीं चलता, जैसे चन्द्रमाकी किरणोंमें उसका कलंक छिप जाता है।'

कुमुदनाग तथा निकुम्भादिका उल्लेख काश्मीरी गाथाओंमें मिलता है। अज-इन्दुमती-विवाहमें आचार धूम-ग्रहण, लाजा-होम, स्वयं न डालकर इन्दुमतीका धात्रीके हाथोंसे अजके गलेमें माला डलवानेकी रीति काश्मीरी विवाहसे मेल खाती है। रघुवंशके वल्लभ नामक टीकाकारने काश्मीरकी कई प्रथाओंकी ओर संकेत किया है। इसका रोचक वर्णन शाकुन्तलमें किया गया है। कालिदासने केसरका वर्णन करते हुए कहा है कि शिशिर और हेमन्तमें स्त्रियाँ स्तनोंपर इसका लेप करती हैं। यह प्रथा काश्मीरमें सम्भव तथा प्रसिद्ध है।

काश्मीर आजसे नहीं, हजारों वर्षोंसे भारतको अपने केसरके अतिरिक्त अमृतसम फलोंसे भी सींचता आया है। शाकुन्तलमें इन फलोंसे जन-जीवनकी तुलना कई बार दी गयी है। उपमाकी सामग्री वही होती है, जो सुलभ हो, अनुभवगम्य हो तथा जनरोचक हो। महाकविने इसका कई बार उल्लेख किया है। भगवान् मारीचके आश्रममें जब दुष्यन्त पहुँचता है, तब कहता है—

उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं
घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रम-
स्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः॥

(शाकुन्तल ७। ३०)

भगवन्! आपकी कृपा तो सचमुच अनोखी है, जिसमें दर्शनसे पहले ही मनोवांछित फल मिल गया, क्योंकि कार्य और कारणका तो यही क्रम है कि पहले फूल लगता है और तब फल। पहले बादल उठता है, तब बरसात, परंतु आपके यहाँ तो सारे सुख आपकी कृपाके आगे-आगे चलते जा रहे हैं।

जिन्होंने कुछ समय हिमालयके किसी प्रदेशमें गुजारा है, वे ही इस उपमाका रसपान कर सकते हैं। काश्मीरके किसी सुन्दर घरमें बैठकर आसपास फलोंसे लदे हुए पेड़ों तथा मेघका दर्शन करके मनुष्य स्वयमेव एक अपूर्व आनन्दका अनुभव करता है। उसकी हृदयतन्त्री झंकृत हो उठती है और वह कालिदासकी मधुद्रवसे लिप्त गीर्वाणीका स्वाद प्राप्त करता है। मधुर तथा सान्द्र मंजरीकी तरह उसकी सूक्तियोंमें प्रीति बढ़ती है और वह जैन कवि रविकीर्तिके साथ गा उठता है—

पुष्पेषु जातिर्नगरीषु काञ्ची
नदीषु गङ्गा कविकालिदासः।

अर्थात् पुष्पोंमें जो स्थान जाति-पुष्पका है, नगरीमें कांचीका, नदियोंमें गंगाका, वही कवियोंमें कालिदासका स्थान है।

संत-चरित—

सन्त श्रीसियारामजी महाराज

(एक भक्तहृदय)

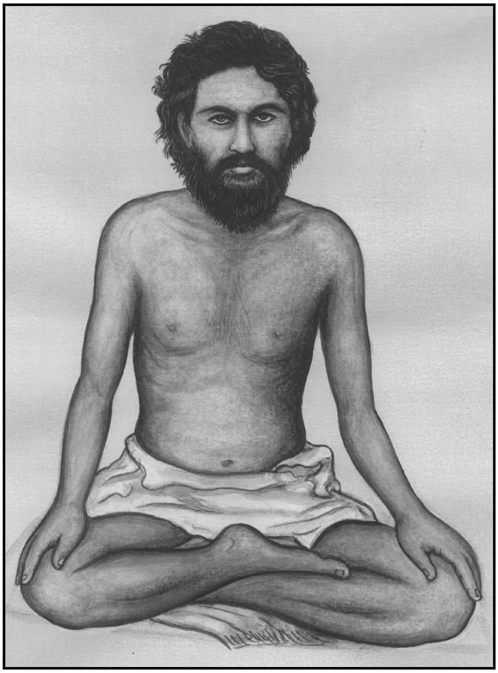

सन्त सियारामजीका जन्म चित्रकूटके निकट बाँदा जिलेके 'साथी' गाँवमें हुआ था। वे बचपनसे ही संस्कारी जीव थे। संसारके दुःखोंको देखकर करुणार्द्र हो जाना तथा 'कैसे यह दुःखसे मुक्त हो' यह रट लगा-लगाकर रोते रहना उनके बचपनका कार्य था। एक बार किशोरावस्थामें ही वे एक साधु-महात्माके साथ घरसे भाग निकले थे और कुछ समय बाहर रहकर उन्होंने इस शर्तपर घर आना स्वीकार किया था कि या तो उन्हें उच्च विज्ञानकी शिक्षा दिलवायी जाय, नहीं तो वे साधु हो जायँगे। इस प्रकार अपनी ज्ञानपिपासाको शान्त करनेके लिये मैट्रिक पास करके वे आगराके सेण्ट जान्स कालेजमें प्रविष्ट हुए। वहाँपर अपने अध्यापकोंके प्रिय शिष्य रहकर आपने गणित और विज्ञानमें अपनी रुचिके अनुसार पूर्ण शिक्षा प्राप्त की। एम०ए० की प्रीवियस परीक्षा पास करके फाइनल परीक्षाके प्रश्नपत्रोंकी अशुद्धियाँ निकालनेके कारण अनुत्तीर्ण कर दिये गये। उसके बाद कपूरथला-कालेजमें प्रोफेसरका कार्य करना आरम्भ किया। कुछ दिन वहाँके प्रिंसिपलके छुट्टीपर चले जानेके समय उनके स्थानापन्नके रूपमें कार्य भी किया। एक कमीशनके सदस्योंके पूछनेपर कि 'आप प्रिंसिपल बननेका यत्न क्यों नहीं करते?' यह उत्तर दिया कि 'यहाँ तो पढ़ाना ही बन्धन प्रतीत होता है, और झगड़ा कौन बढ़ाये?' इन वैराग्यपूर्ण वाक्योंको सुनकर सभी लोग चकित हो गये। कपूरथलामें ही उनकी धर्मपत्नीका देहान्त हो गया। लोकमर्यादाके अनुसार जब मित्रमण्डली दुःख प्रकाशित करनेके निमित्त आयी तो उनको कह दिया—'यहाँ दुःख तो हुआ नहीं, क्यों व्यर्थ आपलोग अपना समय नष्ट करने आये हैं?' फिर कपूरथलासे काम छोड़ दिया और दो वर्षतक गुरुकुल काँगड़ीमें अध्यापनका कार्य किया। माताकी मृत्यु हो जानेपर गुरुकुलको भी यह कहकर छोड़ दिया कि 'धार्मिक संस्थाओंमें काम करनेका जो शौक था, वह पूरा हो गया है।' तबसे लगभग पच्चीस वर्षोंका आपका समय परमहंसवृत्तिमें रहकर लोकोपकारमें ही बीता।

आपने अनेकों गिरे हुओंको उठाया; पतितोंका उद्धार किया; दुखियोंको शान्ति प्रदान की और अँधेरेमें भटकनेवालोंको आँख देकर उनके मार्गको निष्कण्टक बना दिया। ये जहाँ कहीं भी गये, इनके पास जिज्ञासुओंका ताँता-सा बँधा रहा। जिनको इच्छा थी, उनके लिये तो वे ईश्वर बन गये और जो केवल जाँच करनेके लिये ही उनके पास पहुँचे, वे निराश ही वापस लौटे।

स्वामी श्रीसियारामजी महाराजने जिज्ञासुजनोंको समय-समयपर जो उपदेश दिये, वह सिवा उनके हृदयोंके और किसी स्थानपर लिखे नहीं गये। जो थोड़ा-बहुत साधन जिससे उनकी शिक्षाओंपर प्रकाश पड़ सकता है, वह उनके पत्र ही हैं, जो संग्रह करके और तिथिक्रमसे प्रो० श्रीकृष्ण कुमारजीने छापनेका

अनुग्रह किया है। कुछ थोड़े-से पत्र ही उनको मिल सके हैं और पता नहीं कितने पत्र उन्होंने लिखे होंगे और कितने उपदेश मौखिक दिये होंगे, जो अब अतीतके गर्भमें समा गये हैं। यदि वे सभी मिल सकते और पहले कोई उनको सुरक्षित करनेका यत्न करता तो अब कई भटकते हुए लोगोंको उनसे मार्ग मिलता। नमूनेके तौरपर आपके कुछ पत्रोंके अंश नीचे दिये जाते हैं—

एक पत्रमें आपने अपने किसी प्रेमीको काम-क्रोधादि वेगोंके रोकनेके उपाय इस प्रकार लिखे हैं—

'काम-क्रोधादिके वेग उदय होंगे, दब जायँगे, फिर उदय होंगे, फिर दबेंगे। आपका काम है विचारपर खड़े रहनेका। जब मोहका हमला अधिक हो, तब मनसे उसके दुःखरूपी परिणामपर खूब गौर करें। बड़े-बड़े लोग जिन्होंने संसारको तुच्छ समझा और जो उसकी तरफसे बेपरवाह हो गये हैं, उनपर दृष्टि दें। लगातार ऐसा अभ्यास जारी रखनेसे उन वेगोंका जोर अपने-आप शिथिल हो जायगा; परंतु यह काम जल्दीका नहीं है; बड़े धैर्यका है। राजाओंको जीतना आसान है, परंतु इन वेगोंको जीतना बहुत कठिन है। इसलिये बार-बार परमात्मासे मददके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। नित्यप्रति उनकी शरणमें जाना चाहिये, मदद अवश्य मिलेगी—"Knock at the door and it shall be opened unto thee." कैसी अद्भुत ईश्वर-परायणताका उपदेश है।

सांसारिक विषय-भोगकी क्षणिकताको वह भलीभाँति अनुभव किये हुए थे, इसलिये अपने सत्संगियोंको सर्वदा इसकी ओरसे चेताया करते थे। एक पत्रमें कैसी सुन्दर चेतावनी दी है—

'इसी तरह यह भी मद्देनज़र रखना चाहिये कि दुनियाके विषय-भोग कभी खतम नहीं होंगे बल्कि भोगनेसे उनकी वासना दिनोदिन अधिक बढ़ती ही जायगी। और यदि ऐसी वासनाओंके रहते हुए शरीर छूट गया तो अगले जन्ममें यह फिर इसी तरह चक्करमें डालेंगी, और जिन संसारी दुःखोंका सामना अभी पड़ रहा है, यही फिर आयेंगे और फिर नाच नचायेंगे। इसलिये मुमुक्षुको चाहिये कि इनकी तरफसे एकदमसे मुँह मोड़कर मोक्ष-मार्गपर चले, नहीं तो इस Tug-of-war में जीवन नष्ट हो जायगा।'

यम-नियमके पालन करनेपर वे कितना बल देते थे, यह इस पत्रसे स्पष्ट हो जायगा—'भला, आप ऐसे महान् कार्य करनेकी श्रद्धा रखते हैं, जिसमें किसीको दुःख न देना, झूठा व्यवहार न करना, दूसरेका हक न लेना, ब्रह्मचर्य रखना, विषयोंसे बचना आदि बातोंपर पूरा ध्यान रखना पड़ता है। फिर इन बातोंको तोड़नेसे आप कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि आपको इस मार्गमें सफलता प्राप्त होगी। ईश्वरके सहारेपर तत्पर हुए लगातार पुरुषार्थमें डटे रहिये, यम-नियमके पालनमें ध्यान खूब रखना चाहिये। परमात्मा आप ही सब ठीक कर देंगे।'

एक सत्संगीको आप लिखते हैं कि —'जो आदमी भेजा, उसका व्यवहार अच्छा नहीं। आगेसे ऐसे आदमियोंको मेरे पास मत भेजो—आगे जब कभी मेरे पास भेजना चाहो तो भेजनेके पेशतर यह जरूर देख लो कि उसको (१) सच्चा वैराग्य है या नहीं; (२) जिह्वाके स्वादसे चित्त हटा हुआ है या नहीं; (३) उसकी बातपर विश्वास करना चाहिये या नहीं; (४) पापसे उसको घृणा हो गयी है या नहीं; (५) अपनी सेहतको ठीक रख सकता है या नहीं, कुपथ्य करके बीमार न हो जाय; (६) तन, मन, धन और समयको किफायतसे खर्च करनेवाला है या नहीं; (७) यदि उसने कोई व्रत लिया तो कठिनाई आ पड़नेपर उसको निभायेगा कि नहीं; (८) कोई काम दिखलावेके साथ न करे; (९) अपने जीवन तथा रहने आदिका प्रबन्ध मेरे ऊपर न डाले; और (१०) इरादेका पक्का हो।'

गो-चिन्तन—

नामदेवका गौके लिये प्राणदान

सन्त ज्ञानेश्वर और सन्त नामदेव महाराज तीर्थयात्रा करते-करते हस्तिनापुर (दिल्ली) पहुँचे। सन्तोंके आनेसे दिल्लीमें नामदेवके कीर्तनकी धूम मच गयी। हजारोंकी संख्यामें लोग जुटते और कीर्तन सुनकर आनन्दमग्न हो जाते।

यह बात बादशाहके कानोंतक पहुँची। नामदेवके कीर्तनकी प्रचण्ड ध्वनिसे दिल्लीकी गली-गली गूँजती देख उसके क्रोधका पारावार न रहा। एक दिन रातमें सोता हुआ वह इस प्रचण्ड कोलाहलसे जाग उठा। तत्काल घोड़ेपर सवार हो वह कीर्तन-स्थलपर पहुँचा। उसने आँखों देखा कि लाखोंकी भीड़ वहाँ जुटी है। बादशाह लौट आया। उसने इस काफिर नामदेवको खूब मजा चखानेका निश्चय किया। सोचा—हिन्दू गायकी कुर्बानीसे ठिकाने आते हैं। अत: ठीक कीर्तनके समय उसीके सामने यह किया जाय और नामदेवकी सन्तई देखी जाय।

दूसरे दिन कीर्तनके समय उसीके सामने बादशाहने अपने हाथों गोहत्या करके नामदेवसे कहा—'यदि तुम सच्चे फकीर हो तो इसे जिलाओ; तभी हिन्दूधर्मपर तुम्हारा प्रेम माना जायगा। नहीं जिला सकोगे तो इसे ढोंग मानकर तुम्हारा भी सिर उड़ा दूँगा।' गोहत्यासे नामदेवका हृदय तार-तार हो गया। वे भगवान्‌को मनाने लगे—'प्रभो! जल्दी आओ और सनातन-धर्मकी तथा इस देवताकी रक्षा करो।' नामदेवकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। गोमाताका सिर गोदमें लेकर वे बड़ी ही करुणासे भगवान्‌की गुहार करने लगे।

शोक करते-करते नामदेवको मूर्छा आ गयी और वे संज्ञाहीन हो गिर पड़े। उनके प्रिय परमात्माको दया आयी। वे वहाँ प्रकट हुए और नामदेवको जगाने लगे—'नामा! उठो, प्यारी गायकी रक्षाके निमित्त प्राण देनेवाले तुम धन्य हो। मैं तुम्हारे सहायतार्थ आ गया हूँ। देखो, गाय तुम्हें चाट रही है, उठो।'

नामदेव पुन: संज्ञायुक्त हुए। उन्होंने आँखें खोलीं। सचमुच गाय उन्हें चाट रही थी। बादशाहने नामदेवके चरणोंपर सिर धरकर क्षमा माँगी। **[धेनुकथा-संग्रह]**

काश्मीरनरेशकी गोभक्ति

स्वर्गीय काश्मीरनरेश महाराज श्रीप्रतापसिंहजी बड़े ही धर्मात्मा, गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक राजा थे। आप कट्टर सनातनधर्मी, वेद-शास्त्रोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा और प्रजापालक थे। सैकड़ों ब्राह्मण नित्य आपके यहाँ वेदध्वनि, चण्डीपाठ, जप-अनुष्ठान आदि किया करते थे और क्या मजाल, जो राज्यमें कोई गोहत्या कर सके और गोमाताकी ओर अँगुली उठाकर भी देख सके!

एक बार परम प्रतापी काश्मीरनरेश महाराज श्रीप्रतापसिंहजी कहीं जा रहे थे और साथमें बड़े-बड़े अधिकारी भी थे। किसीने देखा—रास्तेमें आगे एक गाय बैठी है। तुरंत कुछ कर्मचारी आगे बढ़े और उन्होंने गायको उठाकर खड़ी कर दिया एवं रास्तेसे हटा दिया। कर्मचारियोंके इस प्रकार दौड़-धूप करनेके कारण महाराजका ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ और महाराजने एक कर्मचारीको पास बुलाकर पूछा कि 'इस प्रकार एकदम दौड़-धूप करनेका कारण क्या था?' आपको बताया गया कि 'महाराज! आपकी सवारी जिस रास्ते जाती, वह रास्ता साफ नहीं था, उसमें एक गाय रास्ता रोके बैठी थी। अब उस गायको हटाकर रास्ता साफ कर दिया गया है।'

महाराज प्रतापसिंहने जब यह सुना कि मेरे कारण गायको कष्ट पहुँचाया गया है, तब उनको बहुत ही दु:ख हुआ। महाराजने क्षोभसे वहीं सवारी रुकवा दी। तुरंत गायको रास्तेमेंसे हटानेवाले कर्मचारियोंको बुलाकर उन्हें बड़ा ही उलाहना देते हुए कहा—'तुमलोगोंने यह क्या घोर अनर्थ कर डाला? क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि हम भारतके क्षत्रिय राजाओंके जीवनका एकमात्र उद्देश्य गौ-ब्राह्मणोंकी रक्षा करना है और गौ-ब्राह्मणोंकी रक्षा तथा सेवा करना ही धर्म है। तुमने मुझ क्षत्रिय राजाके लिये परम पूजनीय गोमाताको उठाकर उन्हें कष्ट पहुँचाया तथा गोमाताका अपमान किया, यह मानवता नहीं दानवता है। भविष्यमें ऐसा कभी मत करना। यदि कोई ऐसा करेगा, उसे तुरंत नौकरीसे अलग कर दिया जायगा।' महाराजकी इस प्रकार अद्भुत गोभक्ति देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये और जय-जयकार करने लगे। **[भक्त श्रीरामशरणदासजी]**

सुभाषित-त्रिवेणी

नारायण-स्तवन
[Salutation to Narayan]

मेघश्यामं पीतकौशेयवासं
श्रीवत्साङ्कं कौस्तुभोद्भासिताङ्गम्।
पुण्योपेतं पुण्डरीकायताक्षं
विष्णुं वन्दे सर्वलोकैकनाथम्॥

[पाण्डवगीता श्लो० ५]

नवीन मेघके समान श्यामसुन्दर, रेशमी पीताम्बरधारी, श्रीवत्सचिह्नांकित, कौस्तुभमणिसे देदीप्यमान अंगोंवाले, पुण्यात्मा, कमलनयन और सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र स्वामी श्रीविष्णुभगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ।

I bow before Sri Visnu who alone is the Lord of all regions, who has charming blue glow, wears bright golden silk, whose chest is adorned with the sign of Srivatsa, whose limbs are lustrous with the glow of Kaustubha gem and He, the Lotus-eyed one can be approached by the pious souls.

नमामि नारायणपादपङ्कजं
करोमि नारायणपूजनं सदा।
वदामि नारायणनाम निर्मलं
स्मरामि नारायणतत्त्वमव्ययम्॥

[पाण्डवगीता श्लो० ६१]

मैं नारायणके चरणारविन्दोंको नमस्कार करता हूँ, नारायणहीकी नित्य पूजा करता हूँ, नारायणके निर्मल नामका उच्चारण करता हूँ और नारायणके अव्यय तत्त्वका स्मरण करता हूँ।

I bow to the Lotus-feet of Narayana, I worship Him always, I utter only His name, and I always meditate on the eternal element that is Narayana.

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

[पाण्डवगीता श्लो० ८०]

जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल अन्तमें समुद्रमें ही जा मिलता है, उसी प्रकार सभी देवोंके प्रति किया हुआ नमस्कार भगवान् केशवके ही पास जा पहुँचता है।

As the water fallen from the heavens goes ultimately to the ocean, so the salutations given to all gods ultimately reaches to Kesava (Narayana).

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्यैवं पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥

[पाण्डवगीता श्लो० ७३]

सभी शास्त्रोंका मन्थन करके, तदनुसार बारम्बार विचार करके, वही सार निकला है कि—सदैव नारायणहीका ध्यान करना चाहिये।

After studying all Sastras and making repeated thinking, this is well settled that Narayana is to be always worshipped and propitiated.

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम्।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत्॥

[विष्णुसहस्रनाम श्लो० ६]

उस जन्म-मृत्यु आदि छः भावविकारोंसे रहित, सर्वव्यापक, सम्पूर्ण लोकोंके महेश्वर, लोकाध्यक्ष देवकी निरन्तर स्तुति करनेसे मनुष्य सब दुःखोंसे पार हो जाता है।

He will be free from all sorrows who always sings the praise of Visnu who is free from the six changes beginning with origin and ending with death and who is the master and over-seer of all the worlds.

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन, ग्रीष्म-वर्षा-ऋतु, श्रावण-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ९।४० बजेतक	गुरु	उ०षा० रात्रिमें १०।२५ बजेतक	१४ जूलाई	**मकरराशि** प्रातः ५। ३८ बजेसे।
द्वितीया ,, ७।२१ बजेतक	शुक्र	श्रवण ,, ८।५५ बजेतक	१५ ,,	**अशून्यशयनव्रत।**
तृतीया सायं ५।१४ बजेतक	शनि	धनिष्ठा ,, ७।३७ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** प्रातः ६।१७ बजेसे सायं ५।१४ बजेतक। **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थी-व्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। २१ बजे, **कुंभराशि** दिनमें ८। १६ बजे, **पंचकारम्भ** दिनमें ८। १६ बजे।
चतुर्थी दिनमें ३।२३ बजेतक	रवि	शतभिषा सायं ६।३६ बजेतक	१७ ,,	**कर्कसंक्रान्ति** दिनमें १०।२० बजे, **दक्षिणायन प्रारम्भ, वर्षाऋतु प्रारम्भ।**
पंचमी ,, १।५३ बजेतक	सोम	पू०भा० ,, ५।५७ बजेतक	१८ ,,	**मीनराशि** दिनमें १२।७ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत।**
षष्ठी ,, १२।४७ बजेतक	मंगल	उ० भा० ,, ५।४२ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।४७ बजेसे रात्रिमें १२।२८ बजेतक, **मूल** सायं ५।४२ बजेसे।
सप्तमी ,, १२।१० बजेतक	बुध	रेवती ,, ५।५६ बजेतक	२० ,,	**मेषराशि** सायं ५।५६ बजेसे, **पंचक समाप्त** सायं ५।५६ बजे, **पुष्यका सूर्य** रात्रिमें १०। ३६ बजे।
अष्टमी ,, १२।२ बजेतक	गुरु	अश्वनी ,, ६।३८ बजेतक	२१ ,,	**मूल** सायं ६। ३८ बजेतक।
नवमी ,, १२।२५ बजेतक	शुक्र	भरणी रात्रिमें ७।५३ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२। ५१ बजेसे, **वृषराशि** रात्रिमें २। १८ बजेसे।
दशमी ,, १।१८ बजेतक	शनि	कृत्तिका ,, ९।३३ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** दिनमें १। १८ बजेतक, **सायन सिंहका सूर्य** दिनमें १। ८ बजे।
एकादशी ,, २।३९ बजेतक	रवि	रोहिणी ,, ११।३९ बजेतक	२४ ,,	**कामदा एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, ४।२० बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, २।४ बजेतक	२५ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें १२।५२ बजेसे, **सोम प्रदोषव्रत, श्रावण सोमवारव्रत।**
त्रयोदशी सायं ६।१८ बजेतक	मंगल	आर्द्रा रात्रिशेष ४।४० बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** सायं ६। १८ बजेसे।
चतुर्दशी रात्रिमें ८।२० बजेतक	बुध	पुनर्वसु अहोरात्र	२७ ,,	**भद्रा** प्रातः ७। १९ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिमें १२। ३८ बजेसे।
अमावस्या ,, १०।१६ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु प्रातः ७।१८ बजेतक	२८ ,,	**अमावस्या।**

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।५८ बजेतक	शुक्र	पुष्य दिनमें ९।४५ बजेतक	२९ जुलाई	**मूल** दिनमें ९।४५ बजेसे।
द्वितीया ,, १।१७ बजेतक	शनि	आश्लेषा ,, ११।५५ बजेतक	३० ,,	**सिंहराशि** दिनमें ११।५५ बजेसे।
तृतीया ,, २।१० बजेतक	रवि	मघा ,, १।४१ बजेतक	३१ ,,	**हरियाली तीज, मूल** दिनमें १।४१ बजेतक।
चतुर्थी ,, २।३३ बजेतक	सोम	पू०फा० ,, ३।० बजेतक	१ अगस्त	**भद्रा** दिनमें २। २२ बजेसे रात्रिमें २। ३३ बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें ९।११ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, श्रावण सोमवारव्रत।**
पंचमी ,, २।२५ बजेतक	मंगल	उ० फा० ,, ३।४८ बजेतक	२ ,,	**नागपंचमी।**
षष्ठी ,, १।४७ बजेतक	बुध	हस्त ,, ४।४ बजेतक	३ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ३।५८ बजेसे, **आश्लेषा का सूर्य** रात्रिमें १०।५७ बजे।
सप्तमी ,, १२।४१ बजेतक	गुरु	चित्रा ,, ३।५३ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२।४१ बजेसे, **गोस्वामी तुलसीदास जयन्ती।**
अष्टमी ,, ११।४० बजेतक	शुक्र	स्वाती ,, ३।१६ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।५६ बजेतक।
नवमी रात्रिमें ९।२० बजेतक	शनि	विशाखा ,, २।२१ बजेतक	६ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रि ८।३५ बजेसे।
दशमी ,, ७।१४ बजेतक	रवि	अनुराधा ,, १।६ बजेतक	७ ,,	**मूल** दिनमें १।६ बजेसे।
एकादशी सायं ४।५५ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा ,, ११।३७ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** प्रातः ६।४ बजेसे सायं ४।५५ बजेतक, **धनुराशि** दिनमें ११।३७ बजेसे, **पुत्रदा एकादशीव्रत** (सबका), **श्रावण सोमवारव्रत।**
द्वादशी दिनमें २।२८ बजेतक	मंगल	मूल ,, १०।१ बजेतक	९ ,,	**भौमप्रदोष व्रत, मूल** दिनमें १०।१ बजेतक।
त्रयोदशी ,, १२।० बजेतक	बुध	पू० षा० ,, ८।१९ बजेतक	१० ,,	**मकरराशि** दिनमें १।५५ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ९।३५ बजेतक	गुरु	उ०षा० प्रातः ६।४१ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। ३५ बजेसे रात्रिमें ८। २५ बजेतक, **व्रतपूर्णिमा।**
पूर्णिमा प्रातः ७।१७ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा रात्रिमें ३।४८ बजेतक	१२ ,,	**पूर्णिमा, कुम्भराशि** दिनमें ४।२८ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ४।२८ बजे।

कृपानुभूति

गायत्रीमाताकी कृपासे जीवन-रक्षा

बात मई सन् १९९२ ई० की है, मैं अपनी माँके विशेष आग्रहपर उज्जैन कुम्भमें गया था। मेरी माँ अपने तीसरे लड़केके यहाँ डिलीवरी होनेकी सम्भावनाके कारण कुम्भमें जा नहीं रही थीं; इसी कारण मैं भी अकेले जानेका इच्छुक नहीं था, परंतु माँने मुझसे कहा, 'तुम चले जाओ, मुझे बुरा नहीं लगेगा।' उनके इच्छानुसार मैं कुम्भमें जानेके लिये तैयार हुआ। स्टेशन जाकर पता किया कि यदि कोई परिचित कुम्भ जा रहा हो, तो मैं भी उनके साथ चला जाऊँ। मैं जब स्टेशन जा रहा था, तो रास्तेमें मेरे एक परिचित श्रीअसाटीजी मिल गये। उन्होंने मुझसे पूछा—'कहाँ जा रहे हो?' मैंने कहा—'स्टेशन जा रहा हूँ, कोई परिचित मिल जायगा, तो उसके साथ कुम्भ-स्नान करने चला जाऊँगा।' वे बोले—'घर जाओ और जल्दी सामान लेकर आ जाओ। हमारे साथ चलो। हमारे साथ ही रहना और हमारे साथ ही भोजन करना।' तदनुसार मैं घर आया और अपना सामान लेकर जल्दीसे स्टेशन पहुँच गया। ट्रेन आनेपर हम सभी एक डिब्बेमें घुस गये। भीड़के कारण मैंने अपना सूटकेस अपने सिरपर रख लिया। कुछ देर बाद मुझे चक्कर आने लगे। मैंने असाटीजीसे कहा कि 'मेरी तबीयत बिगड़ रही है, मैं उतर रहा हूँ।' उन्होंने सूटकेस लेकर अपने सिरपर रख लिया और मुझे ढाँढस बँधाया। इस प्रकार रात्रि १२ बजे हम लोग उज्जैन पहुँच गये। वहाँ असाटीजीकी लड़की, जो कि नर्सके रूप में कार्यरत है, उसके घरपर हमलोग पहुँचे। वह एक कमरे और बरामदेवाले सरकारी घरमें रहती थी, अत: वहींपर हमलोग रात बितानेहेतु ठहर लिये। दूसरे दिन हमलोग वहाँके मन्दिरोंमें दर्शन-पूजन किये। जब मैं महाकालके दर्शनहेतु मन्दिर गया, तो भीड़ होनेके कारण दर्शन दूरहीसे कर पाया, परंतु जब मेरा ध्यान क्षणभरके लिये महाकालकी मूर्तिपर केन्द्रित हुआ तो मुझे जाने क्यों ऐसा लगा कि मुझे गायत्री मन्त्रका एक लाख अनुष्ठान करना चाहिये। अत: मैंने अनुष्ठान किया।

घटना अगस्त १९९२ ई० की है। मेरी माँका २१ जूनको स्वर्गवास हो गया था। उनकी मृत्यु ग्वालियरमें मेडिकल कॉलेजमें हुई थी। मैं, मेरी पत्नी, बेटी-बेटा सभी वहींपर थे एवं उनकी सेवा-कार्यमें लगे हुए थे। तेरहवीं आदिके बाद मैं झाँसीसे अपने घर आ गया। मैं एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालयमें गणितका लेक्चरर हूँ। मैं उस दिन विद्यालयसे अवकाशके बाद शाम करीब ५ बजे पैदल घरकी ओर आ रहा था। बस-स्टैण्डके पास पहुँचा था, हलकी बूँदाबाँदी भी हो रही थी। सड़क गीली थी। अचानक एक मोटर साइकिल मेरे बायीं ओरसे निकलते समय स्लिप हो गयी, उसके धक्केसे मैं सड़कके बीचो-बीच आ गिरा, ठीक उसी समय मेरे पीछे स्टॉफके कई सदस्य आ रहे थे, मुझे सड़कपर गिरा हुआ देखकर वरिष्ठ हिन्दी शिक्षक श्रीजैन मेरे पास आये और मेरा हाथ पकड़कर जोरसे झकझोरते हुए कहा—'सोनीजी! उठो।' मैंने अर्धचेतना में कहा कि 'मेरे अन्दर ताकत नहीं है उठनेकी। आप मुझे किसी प्रकार सड़कके किनारे पहुँचा दीजिये।' वे बेचारे मुझे सड़कके किनारे लाये और पुन: मुझसे उठनेको कहा। उनके इस बार ऐसा कहनेपर न जाने मुझमें कहाँसे शक्तिका आभास हुआ और मैं उनके सहारे उठ खड़ा हुआ। वे मेरा हाथ पकड़कर मुझे रिक्शेके पास ले गये। मैं रिक्शेपर बैठ गया, वे भी मेरे साथ चल पड़े। अब मैं पूर्णरूपसे होशोहवासमें था और स्वस्थ महसूस कर रहा था। फिर भी जो चोट लगी थी, उसके इलाजके लिये जैनजी मुझे हॉस्पिटल ले गये। डॉक्टरने इलाज किया एवं कुछ दवाएँ लिखीं। कुछ दिनों बाद मेरे घाव भर गये और मैं पूरी तरह स्वस्थ हो गया।

एक्सीडेण्टके समय एक विशेष बात मैंने यह देखी कि किसी महिलाके दो धुँधले-से हाथोंने मुझे उठा लिया और धीरेसे सड़कपर रख दिया। मेरा पूरा विश्वास है कि यह अदृश्य रक्षण शक्ति गायत्रीमाता ही रही होंगी।—**जयस्वरूप सोनी**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सुरक्षाकर्मीकी सहृदयता

बात पुरानी है, लगभग २०वर्ष पूर्वकी। मैं अपने परिजनोंके साथ उत्तराखण्डकी यात्राके लिये गया था। हरिद्वार, ऋषिकेश, गंगोत्री, जमनोत्रीकी यात्रा करनेके पश्चात् बदरीनाथजीकी यात्राके लिये बससे रवाना हुआ। उस समय बदरीनाथ मन्दिरतक बस-सेवा चालू हो गयी थी।

शामको ५ बजे बदरीनाथ धाम पहुँचे और एक होटलमें ठहरे। जब ६ बजे मन्दिर पहुँचे तो वहाँ बड़ी भीड़ थी। ग्रीष्मऋतु थी, गरमी लग रही थी, दर्शन करनेवालोंकी लम्बी कतार थी। परिजन कतारमें पीछे पूजाका सामान लेकर खड़े हो गये। अस्वस्थ होनेके कारण मैं पंक्तिमें खड़ा नहीं हो सका। निराश होकर मैं पास ही पड़ी एक बेंचपर बैठ गया। सोच रहा था कि अब भगवान् बदरीविशालके दर्शन कैसे करूँगा? इसी सोच-विचारमें था कि मन्दिरका एक सुरक्षाकर्मी मेरे पास आया और बोला—'बाबूजी, आप उदास लग रहे हैं। क्या भगवान् बदरीनाथजीके दर्शन नहीं करेंगे?' मैंने अपनी विवशता उसे बतायी। इसपर उसने मेरा हाथ पकड़ा और बोला—'चलिये मेरे साथ, मैं आपको दर्शन कराता हूँ।' यह कहकर उसने मुझे मन्दिरकी सीढ़ियोंके पास खड़े व्यक्तियोंकी कतारमें खड़ा कर दिया। अन्य लोगोंने आपत्ति की तो वह बोला—'भाई! देखो ये बुजुर्ग एवं बीमार हैं। हम सबका कर्तव्य बनता है कि ऐसे व्यक्तिकी मनसे सहायता करें। इसपर फिर कोई कुछ नहीं बोला।' मैं पूजाका सामान लेकर मन्दिरके गर्भगृहमें गया और दर्शनकर लौट आया। आते समय मैंने सुरक्षाकर्मीको धन्यवाद दिया और कुछ ईनाम देना चाहा तो उसने इनकार कर दिया और कहा—'बाबूजी! यह तो हमारा कर्तव्य है कि हम बुजुर्गजनोंकी सेवा करें। आपका आशीर्वाद चाहिये, मुझे पैसे नहीं केवल प्रसाद दे दीजिये।' उसने मेरेसे प्रसाद लेकर उसे ग्रहण किया। सच है सेवाधर्म सबसे बड़ा धर्म है।

—डॉ० श्याम मनोहर व्यास

(२)

प्रजाके प्रति सद्भावना—राजधर्म

गुजरातके काठियावाड़ (सौराष्ट्र) प्रान्तमें कवि, कलाकारों और विद्वानोंका एक रम्य शहर भावनगर है।

यह भावनगर एक समय राज्य (स्टेट) था और कृष्णकुमारजी उसके महाराजा थे। कृष्णकुमारजी बड़े प्रतापी, धर्मज्ञ और कर्मठ महाराजा थे। वे प्रजाके साथ घुल-मिलकर उसके सुख-सुविधाओंसे अवगत हुआ करते थे और उसी प्रकार काम किया करते थे। वे आजादीके बाद, महाराजा न होनेपर भी अपनी प्रजाके प्रति सद्भावना और राजधर्म मानकर मदद किया करते थे। सर प्रभाशंकर पट्टणीजी भावनगर राज्यके दीवान थे। वे ब्राह्मण स्वभाव यानी सात्त्विक स्वभावके थे।

पट्टणीजी एक बार राज्यके कामसे मुंबई गये थे। वे एक दिन अपने मित्रके साथ रास्तेपर घूमने निकले। पीछेसे आवाज आयी—'ए पटणा! खड़ा रह।' पट्टणीजीने पीछे देखा तो देखा कि एक बुरे हाल, फटे कपड़े और देवदास-जैसी स्थितिमें आदमी बोले ही जा रहा था—मैं भावनगरका रहनेवाला हूँ। यहाँ मुंबईमें धन्धेके लिये आया था। धन्धा तो चला नहीं, लेकिन सब कुछ बरबाद हो गया। पटणा! मैंने सुना है कि तू बड़ा प्रजाके सुख-दुःख देखनेवाला दीवान कहलाता है, मुझे वापस भावनगर जाना है, लेकिन मेरे पास गाड़ी-भाड़ेके पैसे नहीं हैं, कुछ पैसे दे।

सर प्रभाशंकर पट्टणीजीने बिना सोचे ही तुरंत अपनी जेबसे पर्स निकाला और उस आदमीके हाथमें सौ-सौके दो नये नोट देते हुए कहा—भाई! अभी तो मेरे पास इतने ही पैसे हैं, इन्हें मैं दे देता हूँ।'

पैसे देकर पट्टणीजी और साथी मित्र आगे चल दिये। साथी मित्रने पट्टणीजीसे कहा—सर! आपने बिना पहचाने और 'पटणा' ऐसे उद्धत शब्दसे बुलानेवालेको पैसे दे दिये?

सर प्रभाशंकर पट्टणीजीने शान्तभावसे समझाते हुए

कहा—देखो भाई! हम बड़े प्रतापी, धर्मज्ञ और कर्मठ महाराज कृष्णकुमारजीके दीवान हैं। उन्होंने हमें सिखाया है कि प्रजाके प्रति सद्भावना रखना हमारा राजधर्म है।

वह आदमी अपने स्वभावसे बोला और मैंने अपने स्वभावसे दिया—इसमें क्या आश्चर्य है?

—रतिभाई पुरोहित

(३)

मूक प्राणीकी कृतज्ञता

घटना वर्ष १९६७ की है। अभी मुझे शिक्षक पदपर सेवारत रहते मात्र एक वर्ष ही हो रहा था। वर्षा-ऋतुका अन्तिम माह था। घनघोर हरा-भरा घना जंगल, धानकी फसलसे हरे-भरे खेत लहलहाकर सुगन्ध बिखेरते प्रत्येक जीवको उत्साहित एवं प्रफुल्लित कर रहे थे।

रविवारका दिन था। गाँवमें हम दो ही शिक्षक निवास करते थे। फक्कड़ स्वभावके कारण कोई विशेष सामान भी मेरे पास नहीं था। अतः साथी शिक्षकके यहाँ भोजन-व्यवस्था की गयी। भोजन लगभग तैयार ही था कि इतनेमें एक छात्र दौड़ता हुआ आया और रस्सी माँगने लगा। मेरे पूछनेपर उसने जवाब दिया कि 'गुरुजी! एक-ठो भैंसा स्कूलके कुआँमें गिर गईस' और लड़का रस्सी लेकर दौड़ता हुआ चला गया।

छात्रके चले जानेके बाद मैंने साथी शिक्षकसे घटना-स्थलपर चलनेको कहा। बार-बार कहने एवं विद्यालयकी घटनाकी याद दिलाकर मैंने उन्हें चलनेके लिये तैयार कर लिया। हम दोनों घटनास्थलपर पहुँचे तो वहाँ बच्चों एवं बड़े-बुजुर्गोंकी भीड़ लगी थी। भैंसा खाया-पिया हृष्ट-पुष्ट था। कुएँकी चौड़ाई उतनी ही थी, जिसमें भैंसा समा सकता था, हाँ आजू-बाजूमें अवश्य एक-डेढ़ फुट जगह छूट रही थी। वर्षा-ऋतुके कारण कुएँमें लगभग ३५-४० फुट पानी भरा था और ऊपर ४ या ५ फीट जमीन-स्तरसे खाली था। लोगोंमें बहसबाजी हो रही थी। भैंसा निकालनेके नामपर केवल उसके सींगोंमें रस्सी डालकर खींचनेका प्रयास करते। रस्सीके खिंचावसे उसकी गर्दन कुछ ऊपर आती तो वजनके कारण रस्सी अलग हो जाती और भैंसेका सिर पानीमें चला जाता, जिससे वह छटपटाने लगता था।

अतः बिना कुएँमें उतरे भैंसेको निकालना असम्भव था, परंतु गाँवका कोई भी व्यक्ति कुएँमें उतरनेको तैयार न था। मुझसे न रहा गया और मैंने अपने कपड़े उतारना जैसे ही प्रारम्भ किया कि साथी शिक्षक घबड़ाकर मनाही करने लगे। गाँवके बुजुर्ग भी कहने लगे—'गुरुजी, एसन झिन करिसि मरिअ जाही।' बात भी सत्य थी कि जिला भिण्ड म०प्र०से सैकड़ों कि०मी० दूर मेरा कोई नहीं था। लेकिन मैं डरा नहीं, कुएँकी जगतको अभिवादनकर और बजरंगबलीका स्मरणकर कुएँके बीच रखी लकड़ीसे मैं रस्सी को बाँधकर एक छोरको पकड़कर कुएँमें उतर गया। वहाँपर भी दो जोखिम थे, एक यदि भैंसा छटपटाये तो बगलमें दबनेसे मेरे लिये खतरा निश्चित था, दूसरे यदि मैं पानीके अन्दर जाऊँ और धोखेसे या छटपटानेसे उसके पैरोंके खुर मेरे सिरमें लगे तो भी खतरा था। मरता क्या न करता, मैंने हिम्मत नहीं हारी और ऊपरसे रस्सी जिसका छोर लड़कोंको पकड़ाकर दूसरे छोरको पकड़कर मैं दीवालके सहारे-गहरे पानीमें चला गया और इसी तरह दूसरी तरफ जाकर पानीके तलपर आ गया। सबसे प्रथम मैंने भैंसेके पिछले हिस्सेमें पैरोंके अन्दर कमरमें रस्सी बाँधकर रस्सीके दोनों छोर ऊपर दो-दो व्यक्तियोंको पकड़ा दिये और इसी तरह अगले हिस्सेमें भी मैंने तीसरी रस्सी बाँधकर दोनों तरफ ऊपर पकड़ा दिये। सींगोंमें रस्सी डालकर पहले ही मैंने लड़कोंको पकड़ा दिया था और इस तरह कार्यवाहीके बाद मैं ऊपर आ गया।

अब मैंने ऊपर आकर एक-एक रस्सीपर चार-चार व्यक्तियोंको लगाया और एक ओर रस्सीको खींचनेके लिये कहा तथा दूसरी ओर घूमते हुए रस्सीको आवश्यकतानुसार ढील देनेको कहा, और इस तरह थोड़े परिश्रमसे भैंसा ऊपर आ गया। मैंने भैंसेकी मालिश करायी और थोड़े आरामके बाद मैंने जैसे ही भैंसेको थपकी दी। भैंसा खड़ा हो गया और मेरी तरफ एकटकी लगाकर देखता रहा। सम्भवतः वह मूक होकर भी मुझे कोई आशीर्वाद

दे रहा हो। यह घटना मुझे आज भी याद आती रहती है।

भैंसेके निकलते ही सभी लोग मेरी ओर देखकर कहने लगे, 'एला गुरुजी साक्षात् बजरंगबली हैं, इनकर ट्रान्सफर जिन होइ देईस' उसके बाद जब भी मैं गाँवमें जाता बच्चे, स्त्रियाँ बाहर निकल आते और कहते 'एला गुरुजी बड़े बलवान हैं, इन्हें हनुमान्जी सिद्ध हैं।'

—**लालसिंह जादौन**

(४)

अपमानसे प्रेरणा

मैं मूलरूपसे उत्तराखण्ड राज्यके रानीखेतके पास ग्राम भड़गाँवका रहनेवाला हूँ। प्राइमरी पाठशाला कक्षा ५ पास करनेके उपरान्त मैंने अपने गाँवके समीप जू० हा० स्कूल कुनेलाखेतमें जुलाई १९५६ में कक्षा ६ में प्रवेश लिया, उस समय जो विद्यार्थी पहले प्रवेशहेतु आता, उसका रोल नं० कक्षा उपस्थिति रजिस्टरमें पहले होता था। सर्वप्रथम मैंने प्रवेश लिया, इसलिये मेरा नाम पहले होता था।

मेरे कक्षाध्यापक श्रीचेतराम जोशीजी थे, जो हमें गणित भी पढ़ाते थे, छमाही परीक्षामें अंकगणितमें सभी प्रश्न गलत होनेसे मुझे ०/५० मिला। परीक्षा कापियोंकी गड्डियोंमें सबसे ऊपर लाल स्याहीसे ०/५० लिखा, मेरा ही था। कक्षाध्यापक महोदयने मुझे कक्षामें आगे बुलाया, सब बच्चोंके मध्य कहा, तुम्हें शरम नहीं आती है, तुम्हारा ५० नम्बर से जीरो/लड्डू लाया है एवं एक थप्पड़ भी मार दिया। कक्षाध्यापकद्वारा लड्डू (०) कहनेपर दूसरे दिनसे प्रायः कक्षाके सभी विद्यार्थी मुझे लड्डू-लड्डू कहकर चिढ़ाने लगे। मैं सिर झुकाकर चला जाता था, बहुत शर्म आती थी, परंतु मैंने अपनी इस कमजोरीको ही अपनी ताकत बना लिया। यद्यपि मेरे घरमें कोई पढ़ानेवाला नहीं था, इसके बावजूद मैंने गणितमें काफी मेहनत की। फलस्वरूप वार्षिक परीक्षामें मेरे ५०/५० नम्बर आये। कक्षाध्यापकने मुझे कक्षामें आगे बुलाकर प्रशंसा की एवं बधाई देते हुए कहा—वास्तवमें तुम प्रशंसाके पात्र हो। उस दिनसे वही सब विद्यार्थी जो मुझे देखकर चिढ़ाया करते थे, वे अब चिढ़ाना छोड़, शरमसे गर्दन नीचे कर लेते थे।

—**लीलाधर बेलवाल**

(५)

ईमानदारीका अनूठा उदाहरण

सामान्यतः नवयुवाओंकी उच्छृंखलता और उद्दंडताका ही समाचार मिलता है। परंतु १९ नवम्बर २०२१ की सामान्य-सी घटनासे मन असीम आनन्दसे भर गया। गतवर्ष दीपावलीके पश्चात् मेरा बेटा सपरिवार पुणेसे और बेटी सपरिवार बंगलुरुसे आये थे। १९ नवम्बरकी सुबह बेटीने कहा कि तीनों बड़े बच्चोंके लिये कुछ उपहार लेने चलते हैं। हमलोग समीपके क्रय-विक्रय परिसरमें गये। स्टेशनरीकी एक दूकानपर पेंसिल बॉक्स पसन्द आया, परंतु केवल एक नग ही उपलब्ध था। हम लोग नजदीक ही दूसरी दूकानपर गये। वहाँपर उसी तरहका दो पेंसिल बॉक्स उपलब्ध था। मैं बेटीसे बोला कि तुम दो पेंसिल बॉक्स यहाँसे क्रय करो, मैं पहली दूकानसे एक पेंसिल बॉक्स लेकर आता हूँ। मैंने वह पेंसिल बॉक्स क्रय करनेके पश्चात् शायद २०० रुपयेका नोट दिया। दुकानदार जो कि २०-२२ सालका नवयुवक था, २० रुपये वापस किया। मैंने कहा कि २०० रुपयेका नोट दिया था, उसने अपना गल्ला देखकर कहा कि इसमें २०० रुपयेका एक भी नोट नहीं है। मैंने कहा कि मेरेसे ही जल्दीमें गलती हो गयी होगी, कोई बात नहीं। जब मैं दूसरी दूकानसे बेटीको लेकर वापस आ रहा था, तब उस नवयुवकने आवाज लगाकर बुलाया और कहा कि न तो आपने १०० रुपयेका नोट दिया न ही२०० रुपये का वरन् ५०० का नोट दिया था। मैं उसकी बात सुनकर आश्चर्यमें पड़ गया। उसने ४२० रुपये वापस कर दिये। जिज्ञासावश मैं पूछ बैठा कि आपको पता कैसे चला? उसने कहा कि मुझे आभास हुआ कि लेन-देनमें कुछ गड़बड़ है, इसलिये सी०सी०टीवी० को पीछे घुमाकर देखा तब पता चला कि आपने ५०० रुपयेका नोट दिया था। उसकी ईमानदारी देखकर मैं मुग्ध हो गया। परिवारद्वारा सिंचित सुसंस्कारसे बच्चोंका जीवन कर्तव्यनिष्ठा, सत्यता एवं उच्च विचारसे विकसित हो जाता है, उसको जीवनमें सफलताका आशीर्वाद देते हुए प्रसन्न मनसे मैं घर वापस आया।—**राजकृष्ण अग्रवाल**

मनन करने योग्य

अतिथि-सत्कारकी महिमा

किसी बड़े जंगलमें एक बहेलिया रहता था। वह प्रतिदिन जाल लेकर वनमें जाता और पक्षियोंको मारकर उन्हें बाजारमें बेच दिया करता था। उसके इस भयानक तथा क्रूर कर्मके कारण उसके मित्रों एवं सम्बन्धियों—सबने उसका परित्याग कर दिया था, किंतु उस मूढ़को अन्य कोई वृत्ति अच्छी ही नहीं लगती थी।

एक दिन वह वनमें घूम रहा था, तभी बड़ी तेज आँधी उठी और देखते-देखते मूसलाधार वृष्टि होने लगी। आँधी और वर्षाके प्रकोपसे सारे वनवासी जीव त्रस्त हो उठे। ठंडसे ठिठुरते और इधर-उधर भटकते हुए बहेलियेने शीतसे पीड़ित तथा भूमिपर पड़ी हुई एक कबूतरीको देखा और उसे उठाकर अपने पिंजरेमें डाल लिया। चारों ओर गहन अन्धकारके कारण बहेलिया एक सघन पेड़के नीचे पत्ते बिछाकर सो गया।

उसी वृक्षपर एक कबूतर निवास करता था, जो दाना चुगने गयी, अभीतक वापस न लौटी अपनी प्रियतमा कबूतरीके लिये विलाप कर रहा था। उसका करुण विलाप सुनकर पिंजरेमें बन्द कबूतरीने उसे अभ्यागत बहेलियेके आतिथ्य-सत्कारकी सलाह दी और कहा—प्राणनाथ! मैं आपके कल्याणकी बात बता रही हूँ, उसे सुनकर आप वैसा ही कीजिये। इस समय विशेष प्रयत्न करके एक शरणागत प्राणीकी आपको रक्षा करनी है। यह व्याध आपके निवासस्थानपर आकर सर्दी और भूखसे पीड़ित होकर सो रहा है, आप इसकी सेवा कीजिये, मेरी चिन्ता न कीजिये। पत्नीकी धर्मानुकूल बातें सुनकर कबूतरने विधिपूर्वक बहेलियेका सत्कार किया और उससे कहा—'आप हमारे अतिथि हैं, बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

इसपर बहेलियेने कबूतरसे कहा—इस समय मुझे सर्दीका कष्ट है, अतः हो सके तो ठंडसे बचानेका कोई उपाय कीजिये।

कबूतरने शीघ्र ही बहुत-से पत्ते लाकर बहेलियेके पास रख दिये और यथाशीघ्र लुहारके घरसे अग्नि लाकर पत्तोंको प्रज्वलित कर दिया। आग तापकर बहेलियेकी शीतपीड़ा दूर हुई। तब उसने कबूतरसे कहा कि मुझे भूख सता रही है, इसलिये कुछ भोजन करना चाहता हूँ।

यह सुनकर कबूतर उदास होकर चिन्ता करने लगा। थोड़ी देर सोचकर उसने सूखे पत्तेमें पुनः आग लगायी और हर्षित होकर बोला—मैंने ऋषियों, महर्षियों, देवताओं और पितरों तथा महानुभावोंके मुखसे सुना है कि अतिथिकी पूजा करनेमें महान् धर्म है। अतः आप मुझे ही ग्रहण करनेकी कृपा कीजिये।

इतना बोलकर तीन बार अग्निकी परिक्रमा करके वह कबूतर आगमें प्रविष्ट हो गया। महात्मा कबूतरने देहदानद्वारा अतिथि-सत्कारका ऐसा उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत किया कि व्याधने उसी दिनसे अपना निन्दित कर्म छोड़ दिया। कबूतर तथा कबूतरी—दोनोंको आतिथ्यधर्मके अनुपालनसे उत्तमलोक प्राप्त हुआ। दिव्य रूप धारणकर श्रेष्ठ विमानपर बैठा हुआ वह पक्षी अपनी पत्नीसहित

स्वर्गलोक चला गया। —डॉ० विजयलक्ष्मीसिंहजी

गीताप्रेससे प्रकाशित रोचक कहानियोंकी पुस्तकोंका संक्षिप्त परिचय

भूले न भुलाये (कोड 2047)—प्रस्तुत कहानी-संग्रहमें कुल 32 कहानियाँ विशिष्ट रेखाचित्रोंसहित प्रकाशित की गयी हैं। यद्यपि इन कहानियोंकी आधारशिला ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक है फिर भी मानवीय जीवनकी विभिन्न अवस्थाओंकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति इनमें पूर्णरूपसे हुई है, जिसके व्याजसे परोक्ष अथवा अपरोक्ष नैतिक शिक्षा भी हमें प्राप्त होती है। मूल्य ₹25

आदर्श कहानियाँ (कोड 1093)—इस पुस्तकमें स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंसे संकलित 32 कहानियोंका सुन्दर संग्रह है। मूल्य ₹20

चोखी कहानियाँ (कोड 147)—इस छोटी-सी पुस्तिकामें अत्यन्त सरल तथा रोचक भाषामें भगवान्‌का भरोसा, अधम बालक, स्वाधीनताका सुख, सत्य बोलो, सर्वस्वदान आदि 32 सुन्दर कहानियोंका प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹12

परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ (कोड 888)—इस पुस्तकमें पुनर्जन्मके सिद्धान्तको पुष्ट करनेवाली 24 सत्य घटनाओंका सुन्दर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹25

एक लोटा पानी (कोड 122)—इस पुस्तकमें एक लोटा पानी, बलिदान, मूर्तिमान् परोपकार, भक्त रविदास, अहिंसाकी विजय आदि 24 कहानियोंका अनुपम संग्रह है। मूल्य ₹25

प्रेरणाप्रद-कथाएँ (कोड 1782)—मानव-जीवनके विकासमें सत्कथाओंका विशेष महत्त्व है। प्रस्तुत पुस्तकमें 52 पौराणिक, ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक सरस कथाओंका प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹25

उपयोगी कहानियाँ (कोड 137)—इस पुस्तकमें भला आदमी, सच्चा लकड़हारा, दयाका फल, मित्रकी सलाह, अतिथि-सत्कार आदि 36 प्रेरक कहानियोंका अनुपम संग्रह है। सरल तथा रोचक भाषामें संगृहीत ये कहानियाँ बालकोंके जीवन-निर्माणमें विशेष सहायक हैं। मूल्य ₹20

प्रेरक कहानियाँ (कोड 1308)—स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंसे संकलित बुद्धिमान् बनजारा, हीरेका मूल्य आदि 32 सुन्दर कहानियोंका संकलन। मूल्य ₹15

उपदेशप्रद कहानियाँ (कोड 680)—ज्ञान, वैराग्य, सेवा, परोपकार, ईश्वर-विश्वास, भगवद्भक्तिकी संवर्द्धक 12 कहानियोंका मनोहर संकलन। मूल्य ₹20

शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ (कोड 283)—लौकिक-पारलौकिक कल्याणकी सिद्धिहेतु गृहस्थ साधकोंके लिये उपदेशप्रद 11 कहानियोंका एक सुन्दर संकलन। मूल्य ₹15

पौराणिक कहानियाँ (कोड 1669)—विभिन्न पुराणोंसे संकलित शिवभक्त नन्दभद्र, नारायण-मन्त्रकी महिमा, कीर्तनका फल आदि 36 उपयोगी कहानियोंका सुन्दर संग्रह। मूल्य ₹20

पौराणिक कथाएँ (कोड 1624)—इस पुस्तकमें परहितके लिये सर्वस्व त्याग, मौतकी भी मौत, भक्तका अद्‌भुत अवदान, सत्यव्रत भक्त उतथ्य आदि अनेक सरस कथाओंका प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹20

सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ (कोड 1673)—इस पुस्तकमें भक्त श्रीरामशरणदासजीके द्वारा संकलित तथा कल्याणमें पूर्वप्रकाशित स्थानका प्रभाव, गाँवकी बेटी अपनी बेटी, तेलीका बैल बनकर ऋण चुकाया आदि 36 प्रेरक एवं सत्य घटनाओंका संग्रह किया गया है। मूल्य ₹30

तीस रोचक कथाएँ (कोड 1688)—प्रस्तुत पुस्तकमें विभिन्न पुराणोंसे संकलित 30 शिक्षाप्रद एवं रोचक कथाओंका सुन्दर संग्रह है। मूल्य ₹20

गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ (कोड 1938) पुस्तकाकार—पद्मपुराणमें वर्णित गीताके अठारहों अध्यायके माहात्म्यका सचित्र वर्णन। मूल्य ₹10

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—273005**

प्र० ति० 20-05-2022
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2020-2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

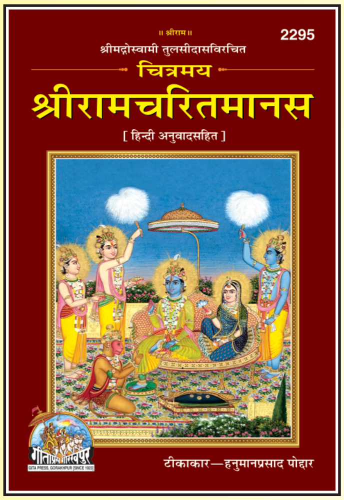

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

चित्रमय श्रीरामचरितमानस (कोड 2295) [ग्रंथाकार, सटीक चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर] जिज्ञासु पाठकोंकी विशेष माँगपर 300 से अधिक आकर्षक रंगीन चित्रोंके साथ पहली बार प्रकाशित हुआ है। मूल्य ₹ 1600

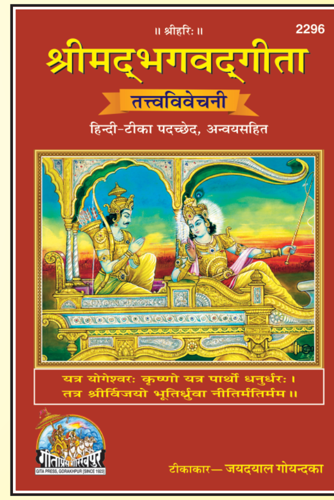

श्रीमद्भगवद्गीता-तत्त्वविवेचनी—हिन्दी-टीका, पदच्छेद, अन्वयसहित, ग्रन्थाकार (कोड 2296)—प्रस्तुत पुस्तकमें गीताप्रेसके आदि संस्थापक परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा प्रणीत गीताकी दिव्य टीका '**गीता-तत्त्वविवेचनी (कोड 2)**-में जिज्ञासु पाठकोंकी विशेष माँगपर अलगसे प्रकाशित '**श्रीमद्भगवद्गीता—पदच्छेद, अन्वय (कोड 17)**-के पदच्छेद और अन्वयको यथास्थान समायोजित किया गया है। इससे पाठकोंको प्रत्येक श्लोकके प्रत्येक शब्दका अर्थ समझनेमें आसानी होगी। मूल्य ₹250

स्वामी करपात्रीजीके दो प्रमुख प्रकाशन

भक्तिसुधा (कोड 1982)—इसके प्रथम भागमें श्रीकृष्णजन्म, बाललीला, वेणुगीत, चीरहरण, रासलीला तथा द्वितीय भागमें देवोपासना-तत्त्व, गायत्री-तत्त्व आदिका विशद विवेचन है। तृतीय भागमें भगवत्प्राप्ति, नामरूपकी उपयोगिता, मानसी आराधना एवं चतुर्थ भागमें वेदान्तरससार एवं सर्वसिद्धान्त-समन्वय है। मूल्य ₹200

मार्क्सवाद और रामराज्य—सजिल्द, (कोड 698), पुस्तकाकार—इसमें स्वामीजीने पाश्चात्त्य दार्शनिकों, राजनीतिज्ञोंकी जीवनी, उनका समय, मत-निरूपण, भारतीय ऋषियोंसे उनकी तुलना, विकासवादका खण्डन, ईश्वरवादका मण्डन, मार्क्सवादका प्रबल शास्त्रीय आलोकमें विरोध तथा न्याय और वेदान्तके सिद्धान्तका विस्तारसे प्रतिपादन किया है। मूल्य ₹200

श्रीगङ्गाजीपर—गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित पुस्तकें

गङ्गालहरी (कोड 699) पॉकेट साइज—इस पुस्तकमें कलिकल्मष-विनाशिनीपुण्यतोया भगवती गङ्गाके स्तोत्रका सानुवाद प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹4

श्रीगङ्गासहस्रनामस्तोत्रम् नामावलिसहितम् (कोड 1709) पॉकेट साइज—यह परम पवित्र स्तोत्र पाठकर्ता भक्तोंको सुख, यश और विजय देनेवाला तथा स्वर्गका प्रदाता है। मूल्य ₹10

9 जून 2022 ई०, दिन गुरुवारको श्रीगङ्गादशहरा है।

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
book.gitapress.org / gitapressbookshop.in
If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)